बालकृष्ण शर्मा नवीन

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमे तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे है, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत मे लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई
सौजन्य : राष्ट्रीय सग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

बालकृष्ण शर्मा नवीन

पवन कुमार मिश्र

साहित्य अकादेमी

Balkrishna Sharma Naveen : Monograph in Hindi, written by Pawan Kumar Mishra on modern Hindi poet Sahitya Akademi, New Delhi (1999) Rs. 25

प्रथम संस्करण : 1999

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

304-305, अन्ना सलाई तेनामपेट, चेन्नई 600 018
एडीए रंगमन्दिर, जे. सी. मार्ग, बंगलौर 560 002

ISBN 81-260-0647-3

मूल्य : पच्चीस रुपये

शब्द संयोजक : क्वालिटी प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110 093
मुद्रक : पवन आफसेट प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110 032

अनुक्रम

1

प्राक्कथन

पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका प्रमुख समय उस युग का है, जब देश में राष्ट्रीयता के प्रति एक विशेप अनुराग जाग रहा था। वह युग गाँधी का युग था। गॉधी के साथ ही क्रान्तिकारियों की एक टोली हिंसा के माध्यम से भारत को स्वाधीन कराना चाहती थी। नवीनजी का युग एक ओर राष्ट्रीय आंदोलनों का, सामाजिक घात-प्रतिघातों का तथा दार्शनिक अनुभूतियों का युग था तो दूसरी ओर स्वच्छन्दतावादी अवधारणाओ और प्रगतिवादी मान्यताओं का युग भी था। पं. बालकृप्ण शर्मा नवीन पर छायावाद और स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव तो है ही, पर साथ ही प्रगतिवादी स्वर भी उनमें कम नहीं है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं और इसी कारण प्रेम और प्रणय की अनुभूति की बहुत-सी कविताएँ इन्होंने लिखीं, जो अभूतपूर्व हैं।

इस समय जो लोग राष्ट्रीयता के संग्राम में जुड़े थे, उनमें एक प्रबल आत्मविश्वास मूर्तिमंत था। नवीनजी में भी यह आत्मविश्वास था।

मैं हूँ भारत के भविष्य का
मूर्तिमान विश्वास महान,
मैं हूँ अटल हिमाचल सम थिर
मैं हूँ मूर्तिमान बलिदान।

इस आत्मविश्वास के साथ ही नवीन जी में क्रान्ति एवं विप्लव का स्वर भी बड़ी तीव्रता के साथ मुखरित हुआ है। यह क्रांति का विस्फोट भी कह सकते हैं। इनकी प्रसिद्ध कविता है 'विप्लव गायन', जिसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं, जो उनकी उस समय की अवधारणा को स्पष्ट रूप से

प्रस्तुत करती हैं—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाये।
नियम और उपनियमों के ये,
बन्धन छिन्न-भिन्न हो जायें।
विश्वम्भर की पोषक वीणा,
के सब तार मूक हो जायें।

पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन हिन्दी के उन कवियों में से हैं, जिनके साहित्य के बारे में पूरा-पूरा आकलन होना शेष है। नवीन जी को प्रायः राष्ट्रीय धारा का या प्रगति का कवि कहकर छुट्टी पा ली गई है। वैसे भी उन्हें केवल राष्ट्रीय धारा का कवि कहकर उनकी मूल रचना-प्रतिभा को एक प्रकार से तिरस्कृत ही किया गया है। नवीन जी का सम्पूर्ण काव्य उनके चिन्तन-मनन और साथ ही राष्ट्रीय दशा-दिशा तथा उनके अंतस् की कथा-व्यथा का विस्तृत आलेखन है। यदि हम उन्हें केवल राष्ट्रीय कविता-धारा तक सीमित रखते हैं तो हम उनकी खण्डित मूर्ति की प्रतिष्ठा करते हैं और उनकी रचनाधर्मिता का अपमान करते हैं। नवीन जी की रचना का एक खण्ड निश्चित रूप से कवि की जुझारू चेतना का प्रतिफलन है, जहाँ राष्ट्र के ज्वलंत प्रश्नों से उनकी चेतना सतत् संघर्ष करती रही है। उनका यह संघर्ष केवल मौखिक संवेदना या काग़ज़ी नावें तैराने वाला नहीं था, वरन् सक्रिय और दैहिक था, जिसके फलस्वरूप वे कितनी ही बार लौह-सीखचो के शिकंजों में जकड़ दिये गये, किन्तु इन लौह सींखचो में उनकी सर्जक-प्रतिमा और भी क्रियाशील हो उठी थी और यह एक जानी हुई बात है कि नवीन जी की बहुत-सी श्रेष्ठ रचनाओं का जन्म इसी भूमि पर हुआ है।

नवीन जी यह मानते हैं कि सृजन की चेतना मे नैतिकता की कसक श्रेष्ठ हो जाती है और सर्जक का मन अंतर्द्वन्द्वों से परे हो जाता है। उनका एक दोहा है—

जौ निकस्यौ नव सृजन कौ, बातै कहा बसाय।
लौकिकता की लघु ठसक, कैसे ताहि सुहाय।।

नवीन जी का रचनासंसार तत्कालीन स्थितियों में एक विशेष रचनासंसार बन जाता है, उनके मन में राष्ट्र की परिकल्पना है, स्वाधीनता की परिकल्पना है और निराशा के बीच महानाश की परिकल्पना भी है। स्वतंत्रता-संग्राम में जूझते हुए, मुक्ति की कामना से सराबोर नवीनजी का यह रचना-संसार ईमानदारी, सक्रिय चेतना और संघर्ष की मीठी-तिक्त

आशा-निराशा, उल्लास और वेदना की अनुभूति से सिक्त है। ईमानदार अनुभूति में बड़ी शक्ति होती है और उसके सामने यथार्थ अपने आप ही रूपायित हो जाता है। नवीनजी का तेवर अपना है, महत्वपूर्ण है और सामाजिक प्रश्नों से जूझने का सही दस्तावेज है।

नवीन जी केवल राष्ट्रीय चेतना या वाह्य संघर्ष के ही कवि नहीं हैं, उनके भीतर एक अंतःसलिला भी है, जिसका संबंध मनुष्य की रागमयी अनुभूति से है। नवीनजी की इस रागमयी चेतना से निःसृत रचना के बारे में लोगों का ध्यान प्रायः नहीं गया है। नवीनजी का जीवन विविधता का जीवन है, उनके पास नानाविध अनुभवों की थाती है, और यही अनुभव उनकी रचना के अंग-रूप में ढल गये है। मुझे बार-बार ऐसा लगता रहा है कि नवीन जी के दोहे उनकी रचनाओं के सर्वश्रेष्ठ अंश हैं। उन्होंने *उर्मिला* महाकाव्य का पचम सर्ग दोहों में लिखा है। इसमें कुल सात सौ चार (704) दोहे हैं। ये दोहे वहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने लगभग तीन सौ-चार सौ दोहों की रचना और भी की है, जो यत्र-तत्र विखरे हुए हैं। उर्मिला के पचम सर्ग के सात सौ चार दोहों को 'वियोग सतसई' ही कहें तो अन्यथा नहीं है। भारतीय काव्य-परम्परा मे दोहों का अपना विशेष स्थान है, प्रारम्भिक काल से लेकर अति आधुनिक काल तक दोहों की रचना होती रही है। कुल दो पंक्तियों का यह छन्द एक भाव तथा अनुभूति के एक बिन्दु का तीव्रता मे आलेखन करता है। शिल्प और भाव की एकतानता ही दोहे के प्राण है। मैं अपनी प्रस्तुत पुस्तक में नवीन जी के दोहों पर एक अध्याय ही लिखना चाहता था, पर इस पुस्तक की अपनी एक सीमा है, इसलिए भूमिका में इसकी चर्चा करना असंगत नहीं है। नवीन जी का हृदय एक बहुत ही कोमल वियोगजन्य हृदय है। नवीन के दोहे उनके हृदय की निरभ्र पहचान है तथा उनके दोहों के साथ-साथ चले बिना उन्हें पहचानना एक दुष्कर कार्य है। ये दोहे नवीन का आतरिक विश्व हैं। बाह्य संघर्ष उनके पैरो में संग्राम-गति बढाते हैं और आतरिक चेतना उनके भाव तथा चिन्तन को समृद्धि प्रदान करती है। ये दोनों दो हैं, पर नवीन की अंतश्चेतना में दोनों मिलकर एक हो जाते है, क्योंकि नवीन जी का चिन्तन भारतीय चिन्तन है, जो भौतिकता के साथ ही कहीं गहरे या बहुत गहरे आध्यात्मिकता के साथ जुड़ा हुआ है। भारतीय चेतना के लिए भौतिकता एक साधनमात्र है, इसमें भौतिकता का तिरस्कार नहीं है, पर भोग और योग की समन्वित साधना ही वह चरम सिद्धि है, जहाँ भारतीय संस्कृति नवीन को स्थिति प्रदान करना चाहती है। नवीन के दोहे इसी इष्ट की सिद्धि हैं। उनका समस्त काव्य, जहाँ एक ओर एक

अनिकेत का बेलौस फक्कड़पन है, वहीं दूसरी ओर जीवनानुभवों की तीखी प्रतिक्रिया भी है। जहाँ एक ओर उनके हृदय में राग और अनुराग की लहरें प्रवलतम आवेग और आवेश से तरंगायित होती हैं, वहीं दूसरी ओर विराग का फ़कीरी ठाठ भी कबीर के अनाहदवाद की तरह उतने ही आवेग से हिलोरें लेता हुआ उनमें विराटरूप से झंकृत होता है। अपने जीवन के कटु-तिक्त अनुभव नवीन जी को अच्छी तरह से याद हैं। ये अनुभव ही उनकी रचनाधर्मिता के सार्थक बिन्दु हैं और इन्हीं सार्थक बिन्दुओं का नाम बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' है। नवीन जी के जीवन का अनुभव ही उनके जीवन की रेखाएँ है, यथा—

हम नितान्त बौड़म बजत, बीते बरस अनेक
मारे-मारे हम फिरें, रहे एक के एक।
हमैं बावरो कहत जग, जो हम जोवत बाट
कहा करैं कुछ परि गयी, ऐसी रेख ललाट।

नवीन जी को अपने समय में जो अनुभव हुए, उनके संदर्भ में भी उनकी अभिव्यक्ति बिल्कुल स्पष्ट है। वे लिखते हैं कि—

नेह दियौ निष्ठा सहित, पायी घृणा अपार,
सेवा को मेवा मिल्यौ, यह कृतघ्न व्यवहार।
हमें अश्म आसन मिल्यौ, मिली प्रतीक्षा पीर,
मिली उपेक्षा औ मिले, उपालम्भ के तीर।

नवीन जी को हिन्दी के प्रवल समर्थन के लिए भी याद किया जायेगा। उनके सम्पूर्ण काव्य में प्रेम और राष्ट्रीयता ही दो प्रमुख काव्यधाराएँ है। उनमें राष्ट्रीय भावनाओं का उद्दाम आवेग है, परन्तु इसके साथ ही उनमें गाँधीवाद की स्पष्ट झलक भी प्राप्त होती है। यद्यपि वे कहीं-कहीं अत्यन्त उग्र भी हो उठे हैं, पर उनके भीतर एक कोमल मन भी सदैव निवास करता रहा है। नवीन जी निर्भीक, निर्मल और संघर्षशील थे, इसलिए वे समझौतावादी कवि नहीं हो सके, तभी वे कहते हैं—

हम अलीक बीहड़ चलैं, सरजैं अपनी लीक
हमें न भावै अन्य को, मारग माछौ नीक।

इस दोहे से यह स्पष्ट है कि नवीनजी अपना रास्ता स्वयं निर्मित करने वाले मनुष्य थे, वे मनुष्य को ही सत्य मानते थे और इसी के लिए वे निरन्तर कर्म करते रहे। मनुष्य को सत्य मानकर उसके लिए संघर्ष करना नवीन जी का लक्ष्य था। वह युग आस्था और संघर्ष का युग था, वे मनुष्य के सत्य के लिए अथवा मानवमात्र की स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहे। उनका स्पष्ट कथन है कि—

मत बिलखहु, सोचहु न कछु, रहहु अशंक अदीन,
मनुज तिहारो सत्य है, हे प्राचीन नवीन।

उनके सन्दर्भ में कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लिखते हैं कि : ''सच्चाई यह है कि नवीन जी अल्हड़ मानवता के श्रेष्ठ कवि थे, चिन्तन उनका चिर चेरा रहा, पर चिन्ता की चाकरी उन्होंने कभी नहीं की। जो *उर्मिला* 1932-33 में पूर्ण हो गयी थी, वह छपी 1960 में। उनके अल्हड़पन की पृष्ठभूमि क्या थी ? क्या आलस्य और लापरवाही, जानने वाले गवाह हैं कि उन्हें व्यक्ति और विराट के जो काम सौंपे गये, उनमें कभी क्षणभर भी देर और क्षणभर की भूल नहीं हुई। फिर ? उनके अल्हड़पन की पृष्ठभूमि यह थी कि वे विराट के प्रति इतनी पूर्णता में समर्पित थे कि उन्हें अपने अणु की ओर ध्यान देने का अवकाश ही न था। संकेत में कहूँ – जब जब एक मज़बूत हाथ ने उन्हें विराट से हटाकर अणु में सीमित करने की कोशिश की तो अपनी शालीनता के कारण वे उस हाथ को हटा न पाये और संस्कारवत अणु न हो सके, बस घुटकर मर गये।'' नवीन जी की राष्ट्रीय भावना नाना संदर्भों में मुखरित हुई है। देश की दरिद्रता और दुर्दशा से लेकर ग्रामीण जीवन की बदहाली तथा विदेशी शासकों का क्रूर आचरण सभी कुछ का निर्भीक आलेखन नवीन जी की रचनाओं को महत्त्व प्रदान करता है। बालकृष्ण शर्मा नवीन केवल कवि ही नहीं थे, वरन् तद्‌युगीन भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के जाने-माने योद्धा थे। विजय और पराजय दोनों में ही अपने आपको खपाने वाले नवीन जी के मन में असफलता पर निराशा और जीत पर ख़ुशी होना स्वाभाविक ही है। उन्होंने 1920 के सत्याग्रह-आन्दोलन की असफलता पर परायज-गीत भी लिखा। उन्होंने लिखा—

आज खड्ग की धार कुंठिता, ख़ाली है तूणीर हुआ।
विजय पताका झुकी हुई है, लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ।।
बढ़ती हुई क़तार फ़ौज की सहसा अस्त-व्यस्त हुई।
त्रस्त हुई भावों की गरिमा महिमा सब संत्रस्त हुई।।

नवीन जी गाँधीवादी भी हैं और क्रान्तिकारी भी। वे अहिंसावादी भी हैं और विप्लववादी भी। वे इन छोरों को समेटकर चलते हैं। उनकी राष्ट्रीयता इन्हीं दो ध्रुवांतों पर कविता के माध्यम से आगे बढ़ती है, उनका यह बढ़ना उनके कर्ममय जीवन की देन है। उनके काव्य में स्वाभाविकता, सच्चाई और यथार्थ की अनुपम गहराई है। उनके काव्य में एक विशिष्ट चेतना है, जिसमें ओज, बल और स्फूर्ति के साथ आक्रोश, गर्जन और उत्तेजना भी है। वे बंदी भी रहे और जेलख़ाने के भीतर बैठकर, उन्होंने वहाँ का चित्रांकन भी

किया, चित्रांकन से मेरा तात्पर्य काव्य-रचना से है। जेल-जीवन का चित्रण करते हुए उन्होंने जो कुछ लिखा, वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण है और उसके द्वारा केवल उनकी ही नहीं, उनके जैसे उनके संगी-साथी आदि के संदर्भ में भी निम्नलिखित पंक्तियाँ समूचे जीवन को ही अभिव्यक्त करती हैं—

ताला कुंजी लालटेन जंगला क़ैदी ये सब है ठीक।
खींच चुकी है नौकरशाही अपने सर्वनाश की लीक।।
तेरी चक्की में ये गेहूँ पिसते हैं पिस जाने दो।
चक्की पिसवाने वालों को मिट्टी में मिल जाने दो।।

नवीन जी का यह बलिदान-बोध व्यर्थ नही गया और यह इतिहास का सत्य है कि इसी धारा पर आगे बढ़ते हुए इस देश ने स्वाधीनता प्राप्त की। नवीनजी उस समय पैदा हुए जब एक प्रकार का द्वन्द्व सारे देश में था, गुलामी और स्वाधीनता का द्वन्द्व। नवीनजी संक्रान्तिकाल के कवि थे। इसीलिए वे लिखते हैं-

हम संक्रांतिकाल के वासी बदा नहीं सुखभोग।

नवीन जी बार-बार घर उजाड़ते रहे और फिर बार-बार घर बनाते रहे। नवीन जी का युग 'असि तथा मसि' का युग था, उसमें संस्कृति के पुनर्जागरण-काल के मूल्य और राष्ट्रीय चेतना के मूल्यों के समन्वित प्रभावों का प्राज्जवल चित्र आत्मस्थ था। वह युग अत्यन्त संवेदनशील तथा विद्युत-कंपनों से परिप्लावित कालखण्ड था। नवीन जी ने जब अपने कवि-जीवन तथा राष्ट्रार्पित व्यक्तित्व की पंखुड़ियों को खोला, उस उमय साहित्य तथा राजनीति दोनों के ही वरेण्य क्षेत्रों में 'नव' का 'रव' छा रहा था और 'गत' का 'मत' इतिहास के पृष्ठों में विलीन हो रहा था। देवीचरण रस्तोगी का यह कथन उस समय की द्वन्द्वात्मक स्थिति को सामने रखता है। यह वह युग था, जब बालगंगाधर तिलक की मान्यताओं और गाँधीजी की मान्यताओं पर सारे राष्ट्र में एक प्रकार की बहस चल रही थी। नवीन जी में उस युग की प्रवृत्तियों की गूँज बराबर सुनाई देती है। वस्तुतः वे तिलक और गाँधी के युगों की धड़कन को अपने काव्य-संग्रहों में बराबर प्रस्तुत करते रहे हैं। नवीनजी ने अपने काव्य मे मौलिकता, विलक्षणता और जीवन्तता को बराबर बनाये रखा है। जहाँ तक छन्द आदि का प्रश्न है, नवीन जी स्वयं कहते हैं, "जो भी कोई छन्द सामने आ गया, उस पर मंथन होने लगा और उसी पर प्रथम पंक्ति लिख ली।" नवीन जी में भावनाओं की गहरी अनुभूति और चिन्तन की गभीरता विद्यमान है, इतना ही नहीं,

उनका काव्य कलापक्ष की दृष्टि से भी निर्दोष है। यद्यपि नवीनजी ने स्वयं लिखा है कि "जहाँ तक छन्दशास्त्र का ताल्लुक है, मैंने उसे कभी नहीं पढ़ा, न मुझे रसों का नाम मालूम है, न मैं यगण-भगण जानता हूँ, परन्तु मेरा यह दावा ज़रूर है कि मेरे छन्द ढीले-ढाले नहीं होते। दूसरे, जीवन एक प्रकार से उखड़ा-उखड़ा-सा रहा है।"– "मेरे पास न शब्द हैं, न कला-कौशल है, न अध्ययन-गांभीर्य है और न स्वेद-सामर्थ्य। एक मैं हूँ जो स्वर, ध्वनिमय शब्दों का ताना-बाना पूरने का नाटक रचता हूँ, परतंतुवाय की ध्यान-केन्द्रीयता की साधना नहीं कर सका हूँ।" नवीन जी का यह आत्मकथन है, उन्होंने चाहे छन्दों का शास्त्रीय अध्ययन न किया हो, पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उनके समस्त काव्यलेखन में छन्द-दोष ढूँढ़ना एक निरर्थक प्रयासमात्र है। नवीन जी का राष्ट्रीय चेतना से सम्पृक्त काव्य उस युग के लिए ही नहीं, आज के लिए भी अतिशय है, उपादेय है। नवीन जी की क्षमता कवि-रूप में विशिष्ट है। ये उस प्रकार के कवि थे, जो केवल कहते ही नहीं थे, वरन् करते भी थे। डॉ. नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है कि "नवीन जी स्वतंत्रता-संग्राम के कर्मठ सैनिक रहे हैं, उनका व्यक्तित्व निर्भीक शौर्य का प्रतीक है। उनकी वाणी तेज के स्फुल्लिंग उगलती है। आत्मा की वाणी होने के कारण इन कवियों (नवीन आदि) की देशभक्ति की कविताओं में अद्वितीय प्रभाव-क्षमता है।"

नवीनजी को कई बार स्वच्छन्दतावादी कवि भी कहा गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ. भगीरथ मिश्र उन्हें मूलतः स्वच्छन्दतावादी कवि कहते हैं, परन्तु डॉ. नगेन्द्र उन्हें राष्ट्रीय सांस्कृतिक कवि मानते हैं। उनका कथन है कि, "नवीनजी न छायावादी हैं और न स्वच्छन्दतावादी, उनके काव्य का प्रमुख स्वर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक ही है। विभिन्न आलोचक-वर्ग चाहे उन्हें जिस धारा में परिगणन करना चाहे, पर यह निर्विवाद है कि सभी विद्वान् नवीन जी के काव्य में राष्ट्रप्रेम के समस्त उपादानों की स्वीकृति प्रदान करते हैं।" नवीन जी में केवल राष्ट्र के लिए ही नहीं, वरन् जन-सामान्य के लिए भी भावुकता से परिपूरित रचनाएँ लिखी हैं। उन्होंने राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय चेतना को राजनीतिपरक नहीं माना है, वरन् उसे भावनात्मक और रागात्मक रूप प्रदान किया है और यही कारण है कि उनके काव्य में इतिहास की घटनाओं का समावेश प्रायः नहीं है, परन्तु मनुष्य के सत्य की प्रतिष्ठा सब जगह पर है।

'विप्लव गायन' हो या उनकी अन्य कविताएँ सब जगह उनमें एक अदम्य चेतना काम करती है, जहाँ 'विप्लव गायन' में वे क्रांति की कामना

करते हैं, पर इस क्रांति में वे यह चाहते हैं कि कायरता और मूढ़ विचारों को नष्टकर एक नये राष्ट्र और समाज की स्थापना हो, वहीं वे 'जूठे पत्ते' शीर्षक कविता में तथाकथित ईश्वर को अलग हटाकर उसके स्थान पर मनुष्य को ही स्थापित करने की बात करते हैं–

जगपति कहा ? अरे सदियों से बहता हुआ राख की ढेरी।
वरना समता संस्थापन में लग जाती क्यों इतनी देरी ?
छोड़ आसरा अलख शक्ति का, रे नर स्वयं जगपति तू है।
तू गर जूठे पत्ते चाहे तो तुझ पर लानत है–थू है।।

'जूठे पत्ते' शीर्षक कविता के सन्दर्भ में डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन लिखते हैं कि "यह किसी नास्तिक का वैज्ञानिक-बौद्धिक नही, वरन् परम आस्तिक का ग्लानिपूर्ण उपालंभ है, क्योंकि यह उपालंभ अपने चरम आवेग पर उपस्थित हुआ है, इसीलिए वह इतना अधिक लोकप्रिय वन सका।" नवीन जी के काव्य ने राष्ट्रीयता के पनपने, वढ़ने और फूलने-फलने में महान योगदान दिया है। उनकी लेखनी राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों के परिवर्तन की हामी रही है। डॉ. नगेन्द्र ने उनके काव्य पर विचार करते हुए लिखा है कि "यह देश के उद्दीप्त जीवन की पुकार है। उनके स्वरों में देश का आहत अभिमान जैसे बौखला उठा है, नवीन स्वतंत्रता-संग्राम के कर्मठ सैनिक रहे हैं। उनका व्यक्तित्व निर्भीक शौर्य का प्रतीक है। उनकी वाणी तेज के स्फुल्लिंग उगलती है। आत्मा की वाणी होने के कारण इन कवियों की देशभक्ति की कविताओं में अपूर्व प्रभाव क्षमता है। देश का योग्य समाज उनको सुनकर हथेली पर प्राण ले घर से निकल पड़ा था।" नवीन जी के काव्य में स्वर्णिम अतीतजन्य भूमि-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, विदेशी शासन-निन्दा, वीर-प्रशस्ति, भाषा-प्रेम तथा जागरण-अभियान आदि का प्रचुर परिमाण में आलेखन हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् नवीन जी का कवि संस्कृति-प्रेम की साधना में अधिक अनुरक्त हुआ है और इसीलिए वे लिखते हैं–

बने असुन्दर सुन्दर समन्वय,
क्षिप्त चित्त बन जाए तन्मय,
रजकण तप कर बने हिरणमय,
यों इस क्षर को पद अक्षर दो।
मरू कण-कण में मधुर रस भर दो।

नवीन जी का प्रकृति-चित्रण भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने परम्परित ऋतु-वर्णन भी अपने ढंग से किया है। उनका ऋतुवर्णन भावना से जुड़ा

है। उन्होंने प्रत्येक ऋतु का वर्णन दोहों में किया है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं–

ग्रीष्म – झुलसत हिय दहकत हृदय, आशा वरि-बरि जात।
तड़पत मन, सूखत अधर, रोम रोम मुरझात॥

पावस – अँसुवन की पावस झड़ी, लगत आपुही आप।
ज्यो वर्षा शीतल करत, खर निदाघ अभिशाप॥

शरद – उडगण-मिस चमकत, झरत, नैश हास्य के फूल।
शरद-निशा हुलसत, पहिरि मुद चाँदनी दुकूल॥

शिशिर – आलिंगन की भावना, संग रहिबे की चाह।
शिशिर निराशा में करत, शीतल हिय उत्साह॥

हेमन्त – रोम रोम कँपि उठतु है, ठिठुर जात अंग-अंग।
आँखिन ते चुइ परतु है, हिय वेदना अनंग॥

बसन्त – उठि आवत है हृदय तें पुनि नवजीवन साँस।
आशा सुहरावति सम्हरि, दुसह वेदना फाँस॥

भारतीय परम्परा में ऋतुवर्णन विशेष महत्त्व रखता है। नवीन जी का यह ऋतु-वर्णन कुल दो-दो पंक्तियों में ऋतु का बिम्ब तो उपस्थित करता ही है, मनुष्य-जीवन की दशा का भी आलेखन करता है। इस वर्णन में केवल बिम्ब-विधान ही नही है, भाव-विधान भी है। जहाँ ग्रीष्म में हृदय धधकता है, आशा जल जाती हैं, मन तड़पता है, अधर सूख जाते हैं, वहीं इस भाव के माध्यम से प्रकृति का सजीव चित्र भी उपस्थित होता है। यहाँ प्रकृति और मनुष्य दोनों साथ-साथ हैं।

नवीन जी केवल राष्ट्रीयता के ही कवि नहीं हैं, वे प्रीति-प्रेम के भी कवि है। वियोग और विरह का भाव उनकी कविताओं में प्रभूत मात्रा में प्राप्त होता है। उनके दोहों में प्रेम-वियोग के द्वारा मन और हृदय की नानाविध स्थितियो का चित्रण हुआ है। हृदय के भीतर उठने वाले हाहाकार को सार्थक वाणी देने का यह प्रयास साहित्यिक दृष्टि से तो मूल्यवान है ही, जीवन की रागमयी अनुभूतियों से आपूरित करने के लिए भी मूल्यवान है। *उर्मिला* महाकाव्य के सात सौ दोहों में विरह-अनुभूति की जो मार्मिक व्यंजना है, वह अद्वितीय है। यद्यपि यह उर्मिला के विरह से संबंधित है, परन्तु प्रत्येक दोहा अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है और इसलिए उर्मिला का विरह बिन्दु-विन्दु समन्दर है। इन दोहों में परम्परा से चली आई ऋतु-वर्णन की परम्परा भी है, किन्तु वह अनुकरण नहीं है, वरन् मौलिक है। इन दोहों में वियोग-व्यथा का एक-एक बिम्ब-द्वारा और एक-एक स्वतंत्र भाव का आवेगपूर्ण वर्णन है।

नवीन जी का जीवन एकांत वियोग व्यथा से कितना जुड़ा हुआ है, इसकी साक्षी एक-एक दोहा देता है। यह साक्षी सामान्य साक्षी नहीं है, यह विशिष्ट पैटर्न या फार्मूले की बनावट नहीं है, वरन् विराट की अनुभूति और अंतस् की रागमयी लहरों का नर्तन है। अपने आप में यह प्रयोग एक नया रूझान है, जिसमें बिम्ब, प्रतीक, प्रकृति, मानसिक ऊहापोह, आशा, निराशा, दुश्चिंता आदि के अनगिनत रूप तथा हाव, भाव और हेला की कितनी ही धाराएँ अपने विशुद्ध रूप में विद्यमान हैं। जीवन का ऐसा रागमय बोध विरलों को ही होता है। राग की अनुभूतिमयी व्यंजना *उर्मिला* महाकाव्य में उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है। यद्यपि इन दोहों का संबंध उर्मिला की विरह-व्यथा से है, परन्तु दोहा तो मुक्तक है। अतः प्रत्येक दोहा अपने आप में एक स्वतंत्र भाव की अभिव्यक्ति है। नवीन जी के सामने बिहारी-जैसा राज-दरबार तो था नहीं कि वे धन के लिए काव्य में चमत्कार पैदा कर विशेष तरह के दोहे लिखते। नवीन जी के उर्मिला के विरह से संबंधित दोहों की रचना विरह की असीम कातर व्यथा का उद्घाटन करने के लिए की गई है। विरह की शास्त्रीय दशाओं का रूप भी इन दोहों में है, परंपरित ऋतु-वर्णन भी इनमें है और यदि प्रयत्न किया जाय तो नायिका-भेद के कई रूप भी इन दोहों में देखे जा सकते हैं, पर नवीन जी की रचना का आधार न तो नायिका-भेद है और न कोई अन्य शास्त्र है। वे तो अपने जीवन की ही रागमयी अनुभूति को विविध रूपकों, बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं, वे एक प्यार की कहानी को टटके रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं और उसका रूप निम्नलिखित दोहे में इस प्रकार है—

प्यार कहानी हृदय में, अरुझानी अकुलाय।
वाणी अटकी कंठ में, हे मेरे रसराय॥

यह दोहा नवीन जी के *उर्मिला* काव्य को रचने की अवधारणा को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करता है। उर्मिला की यह कहानी उनके हृदय में पता नहीं कब से उलझी रही होगी, जो उन्हें पता नहीं कितने वर्षो तक व्याकुलता के समुद्र में डुबोये रही होगी और फिर पता नहीं, कब यह व्याकुलता उनके कंठ से फूट पड़ी होगी। नवीन जी जहाँ ओज-विद्रोह के कवि हैं, वहीं प्रेम और विशेषतः विरह की व्यथा का सटीक वर्णन करने में भी वे अपने ढंग के अकेले कवि हैं। उर्मिला के विरह-वर्णन में उनके मन का सारा प्रवाह उर्मिला के विरह के साथ ही एकमेक हो गया है। रूपक, दृश्यबिम्ब, मधुर कोमल भाषा का प्रवाह और उसमें मन की सशक्त प्रतीति उर्मिला के विरह की विशेषता है। नवीन जी लिखते हैं—

मुरिजनि देखहु तुम इतै, हे सुकुमार कुमार
अरुझि जा इगें दृग इहाँ, बिछे साँस के तारे।

रूपक-रचना में भी नवीन जी ने अद्भुत कौशल से काम लिया है। कहीं-कहीं तो एक विशिष्ट आधार को लेकर रूपक-रचना की गई है। निम्नलिखित दो दोहे नाटक के विविध सूत्रों को लेकर रचे गये हैं, देखिए—

विपिन-बिहारी है नहीं, तुम नर सुघर प्रवीन।
मो बिन कैसे होओगे, रंगमंच रसलीन॥
सूत्रधार तुम, सुनट तुम, तुम नाटक के प्रान।
हौं प्रवीन नट नागरी, रस भावना प्रधान॥

उर्मिला काव्य, प्रकृति-चित्रण के लिए भी महत्वपूर्ण है। मैं इसके पूर्व ही षड्ऋतु-वर्णन का उदाहरण प्रस्तुत कर चुका हूँ। अधिक विस्तार में न जाते हुए वर्षा से संबंधित कुछ दोहे लिख रहा हूँ—

मौं अंगना फुहियाँ बरसि, सुइयाँ सी चुभि जाँय
घन छइयाँ बहियाँ पकरि, लाई विरह बुलाय।

इस दोहे में एक ओर तो छोटे-छोटी बूँदों के गिरने का प्रत्यक्ष रूप है तो दूसरी ओर यह वर्षा ही विरह को बुलाकर लाने वाली है। वर्षा की छोटी-छोटी बूँदें, जिन्हें कवि फुहियाँ शब्द से अभिव्यंजित करता है, अत्यधिक क्रियाशील है और बादलों की छाँह-बाँह पकड़कर विरह को बुला लाती हैं। जरा इसकी भाषा तो देखिए—फुहियाँ, सुइयाँ, छहियाँ, बहियाँ-जैसे कोमल शब्दों का प्रयोग विरह के लिए किया गया है। इसमें जो बिम्ब बनता है, वह एक रूप का बिम्ब है, उसे हम प्रत्यक्ष बिम्ब भी कह सकते हैं। क्रियात्मकता का सन्निवेश एक अन्य दोहे में वर्षा में धुले पक्षों को देखकर, वियोग-सिसकन में बदल जाता है। यथा —

धोए धोए से सघन द्रुम पल्लवहिं निहारि।
कराक सिसक मिस बहि चली, नयन उघारि उघारि॥

वर्षा से संबंधित दो दोहे प्रस्तुत कर मैं इस विवरण को पूरा कर रहा हूँ—

जल बरसत, कसकत हृदय, भारी भारी होय।
बरसावत मद रंग को, घन चूनरी निचोय॥
मन डौलौ डोलौ फिरै पावस में दिन रैन।
कहा कहौ या की कथा ? पावत नैक न चैन॥

वर्षा हिन्दी के कवियों को विशेष रूप से प्रिय है। वर्षा में विरह की व्याप्ति असीम हो जाती है। नवीन जी के वर्षा के दोहों में इस असीम व्याप्ति

का स्वरूप मार्मिक रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

मैंने पहले ही लिखा है कि नवीन जी राग के कवि हैं और यह राग अधिकतर वियोग के रूप में चित्रित हुआ है। प्रेम अपने आपमें आज तक अनसुलझा भाव है। नवीन जी ने प्रेम को काव्य के माध्यम से समझाने का प्रयत्न किया है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है–

परिभाषा चिर प्रेम की निपट अटपटी होय।
वाको तत्व निगूढ़ अति, जानत है कोउ कोय॥

प्रेम चटपटी हृदय की, प्रेम हृदय की बात।
प्रेम-झूमिबो मत्त ह्वै इतैं उतैं वतरात॥

प्रेम चिरन्तन विकलता, प्रेम चिरन्तन आह।
प्रेम सतत अवहेलना, प्रेम-दरस की चाह॥

मन मोती को खोइबो, नित्य ठगैवो प्रान।
अनबोले सहिबौ व्यथा, यहै प्रेम की कान॥

नवीन जी मूलतः कवि हैं और उनका काव्य अपने समय का तो है ही, पर उसके साथ ही समय के आगे का भी है। उनमें विषय का वैविध्य है, प्रेम की असीमता है और प्रेम के माध्यम से अलौकिकता का संधान भी है। उनके काव्य में विविध प्रकार के बिम्ब हैं, जिनमें टीस है, वेदना है, पुकार है, गुहार है और अनन्य समर्पण-भाव भी है। इसके साथ ही वे ऊर्जा और आक्रोश के कवि भी हैं, जहाँ वे सम्पूर्ण ध्वंस के हिमायती भी हैं, जिसमें आक्रामकता भी है और टकराने का निश्चय भी। उन्होंने जीवन और कविता में सामंजस्य स्थापित किया है या यों कहें कि वे स्वयं भी जीवन और काव्य के मूर्तिमंत रूप थे, उनका रूपक-निर्वाह, टटकी उपमाएँ, नवीन प्रयोग तथा भाषायी शिल्प-संरचना काव्य को असंदिग्ध रूप से महत्त्वपूर्ण बनाते हैं। उनकी कविता में रूपकों की एक अलग विशेषता है। उनके काव्य में राग-रागिनियों के मूर्त्त रूपक हैं, शब्द और नीरवता के रूपक हैं, धरती, समुद्र और आकाश के विराट रूपक हैं। प्रकृति से संबद्ध रूपक हैं, जीवन-संघर्ष के रूपक हैं, गाँव, गली, हाट, बाट और घाट के रूपक हैं। अर्थ यह कि नवीन का काव्य जीवन से संबद्ध सभी आयामों को समेटने का सार्थक प्रयास है।

नवीन जी पत्रकार भी रहे हैं और पत्रकारिता में उन्होंने उस युग का आदर्श स्थापित किया है। उनके आराधक गणेशशंकर विद्यार्थी थे, जिन्होंने 'प्रताप' अखबार निकाला था। गणेशशंकर विद्यार्थी बहुत ही दुबले-पतले, किन्तु जुझारू इंसान थे और उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता के प्रतिमान स्थापित किये थे। गणेशशंकर विद्यार्थी का संग-साथ नवीन जी के लिए गुरु और शिष्य का सामीप्य था। गणेशशंकर जी उनके सब कुछ थे—गुरु, सखा और तात। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ थे। गणेशशंकर की हत्या हिन्दू-मुस्लिम-दगों के बीच हुई। उन्होंने साम्प्रदायिकता के विरोध में अपनी आहुति दे दी। यह नवीन जी का परम सौभाग्य था कि वे उस समय तक 'प्रताप' से जुड़ गये थे। उनकी मृत्यु के बाद नवीन जी ने ही 'प्रताप' का संपादन किया था। नवीन जी के संपादकीय तद्युगीन भारतीय स्थितियों के संदर्भ में लिखे गये दस्तावेज हैं। उनके सम्पादकीय और विविध टिप्पणियाँ स्पष्टवादिता और निर्भीकता के कारण सबके लिए मूल्यवान थीं। नवीन जी ने पत्रकारिता का एक आदर्श स्थापित किया। वे अंग्रेज़ी शासन के समय में, उस शासन के विरोध में निर्मम होकर लिखते रहे। इन्हीं लेखों के कारण उन्हें कारागृह की यातनायें भी भुगतनी पड़ी। उनके सम्पादकीय जहाँ एक ओर स्वतंत्रता की उद्दाम आकांक्षा से भरे हुए थे, वहीं दूसरी ओर उनमें भारतीय जीवन का मर्मांतक, किन्तु यथातथ्य चित्रण भी था। आजकल पत्रकारिता के सन्दर्भ में खोजी पत्रकारिता-जैसा शब्द चल पड़ा है, जिसका अर्थ है—दबे-छिपे कारनामों को उजागर करना। इसके घेरे में महानगरों के भीतर छिपे हुए कालाबाज़ार, गुंडागर्दी, हत्याएँ, वेश्यागिरी, अवैध धंधे आदि के उत्तेजक समाचार प्रधान रूप से रहते हैं। नवीन जी ने इस प्रकार की खोजी पत्रकारिता कभी नहीं की। उनका लक्ष्य तो भारत को स्वाधीन कराना था। उनमें भटकाव नहीं था और वे बुलंदगी के साथ बेबाक रूप से अपने अग्रलेख लिखते थे। इस समय के उनके तमाम संपादकीयों और अग्रलेखों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाना चाहिए। अब जबकि पत्रकारिता के विश्वविद्यालय खुल गये हैं, तब नवीन जी के संपादकीयों और अग्रलेखों का पुस्तक रूप में प्रकाशन अनिवार्य हो गया है। मध्यप्रदेश मे माखनलाल चतुर्वेदी के नाम से पत्रकारिता विश्वविद्यालय है, उसे तो कम-से-कम यह पुनीत और महत्तम कार्य करना ही चाहिए।

नवीन जी सुदर्शन पुरुष थे—छह फुट लंबे, गौरवर्ण, एक तरह का राजसी तेज लिए हुए, सिर पर टेढ़ी गाँधी-टोपी लगाए हुए उन्हें देखना, अपने आपमें एक उपलब्धि थी। वे एक बहुत अच्छे वक्ता भी थे और उस समय

उत्तरप्रदेश में सब जगह उनका अत्यधिक प्रभाव था। वे अपने समय के प्रभावशाली नेता थे। स्वतंत्रता के बाद की प्रथम संसद में वे सांसद थे तथा भारतीय 'संविधान निर्मात्री परिषद्' के सदस्य भी मनोनीत किए गये थे। वे राजभाषा आयोग के महत्त्वपूर्ण सांसद थे और भारत सरकार ने उन्हें 'पद्म विभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया था।

मैंने अपनी इस छोटी-सी पुस्तक में नवीन जी के कवि-रूप और पत्रकार रूप का विशेष रूप से उद्‌घाटन किया है। एक छोटी-सी पुस्तक में जितना कुछ समोया जा सकता था, उसका मैंने भरसक प्रयास किया है। मेरी यह कृति उस समय प्रकाशित हो रही है, जब नवीन जी की जन्म-शताब्दी सारे देश में उत्साह के साथ मनायी जा रही है। गाय के बाड़े में आठ दिसम्बर सन् अट्ठारह सौ सन्तानवे (8 दिसम्बर, 1897) को पैदा हुआ, एक ग़रीब इनसान का बेटा कितनी-कितनी ऊँचाइयों तक पहुँच सकता है, इसका प्रमाण नवीन जी का जीवन है। हमारा आधुनिक युग और आज के राजनेता नवीन जी से बहुत कुछ ग्रहण कर सकते हैं। वैसे वे नेहरू-युग के थे और तब भारतीय राजनीति का आदर्श यथावत् कायम था। समय का प्रवाह कुछ इस तरह से बदला है कि तब की संसद और आज की संसद में एवं तब के सांसदों और आज के सांमदों में बड़ा अन्तर आ गया है। तब नेहरूजी बोलते थे तो भारत का इंसान जाग उठता था और अब संसद की आवाज़ ही कहीं मंद हो गई है तो कही गुम हो गई है। आज के आपाधापी के युग में नवीन जी-जैसे लोग प्रकाशस्तंभ के रूप में देखे जा सकते हैं और उनसे सभी क्षेत्रों में बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है। वे सम्पूर्ण कवि थे, सम्पूर्ण नेता थे और सम्पूर्ण पुरुष थे। सुख और दुःख जीवन में लगे ही रहते हैं। नवीन जी का गार्हस्थ्य जीवन सुखमय नहीं रहा। उन्होंने लिखा भी है कि "हम नाहक ही दो हो बैठे।" उनका विवाह बहुत प्रीतिकर नहीं रहा, किन्तु इसके बावजूद नवीन जी कभी हतप्रभ नहीं हुए। वे तो शलाकापुरुष थे और कवि-रूप में, नेता के रूप में में, सांसद के रूप में सर्वत्र वे अप्रतिहत आस्था के प्रतीक हैं।

2

परिचय- एक रेखावृत्त

मैंने सन् 1954 में पहली बार बालकृष्ण शर्मा नवीन को देखा। अच्छे लम्बे पूरे क़द के, ललाई से दीप्त मुखमण्डल, सुती हुई नासिका, धवल केश-राशि पर टेढ़ी खादी की टोपी, सफ़ेद डाक खादी के धोती-कुरते पर, हल्के भूरे रंग की जैकेट, बड़ी-बड़ी चमकती आँखें, गम्भीर खिलखिलाता मुखमण्डल— सभी कुछ प्रभावशाली। माधव कॉलेज़ में उनका व्याख्यान और कविता-पाठ अत्यन्त गुरु गम्भीर और ललित। इतने दिनों पश्चात भी उनका वह स्वरूप और बेहद प्रभावी प्रतीत होता है। नवीन जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, चुम्बकीय व्यक्तित्व था। तब तक उनके तीनों रूप प्रसिद्धि पा चुके थे—कवि, राजनीतिज्ञ और पत्रकार। किन्तु इन सबसे अधिक वे एक सहृदय, सहज और संघर्षशील मनुष्य थे। उन्हें जानना तो सुखद था ही, पर पहचानना और भी आह्लादकारी था।

नवीन जी के पूर्वज ग्वालियर ज़िले के गिर्द परगने के एक गाँव गोन्दा के रहने वाले थे। कालान्तर में इनके पिता और अन्य सम्बन्धी 'भयाना' ग्राम में आकर बस गये थे। भयाना एक छोटा-सा गाँव है, जो शाजापुर ज़िले के शुजालपुर परगने में है। शुजालपुर वर्तमान समय में मध्यप्रदेश में है। पहले यह स्थान ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत था। बालकृष्ण शर्मा नवीन ने स्वयं लिखा है कि 'मेरा जन्म ग्वालियर राज के शुजालपुर परगने के भयाना नामक गॉव में हुआ था।' बालकृष्ण शर्मा का जन्म 8 दिसम्बर सन् 1897 (सम्वत् 1954, मार्गशीर्ष पूर्णिमा) को हुआ था। नवीन जी का जन्म-स्थल उनके ताऊजी के घर का एक बाड़ा था, जहाँ गायें बाँधी जाती थीं। इस गोशाला में अनेक गायों ने अपने-अपने बछड़ों को जन्म दिया था। 'नवीन' जी के पिता भगवत्-भक्त और परम वैष्णव थे। गौशाला में जन्म लेने तथा पिता के

कृष्णानुराग के कारण, इस बालक का नाम बालकृष्ण रखा गया। बालकृष्ण की माँ स्नेहशीला थी और वे कृष्ण-भक्ति के पद लय और सुर में गाया करती थीं। बालकृष्ण पर माँ का बहुत प्रभाव था, जो उनके गीतों में राग-रूप में व्यंजित हुआ। बालकृष्ण का कंठ भी मधुर था और बड़े होकर अपने गीतों को ललित कंठ से सुनाया करते थे।

बालकृष्ण का बचपन अभावों और ग़रीबी से भरा हुआ था। कच्चा मिट्टी का घर था, जो बरसात में टपकता था। भोजन आदि भी अव्यवस्थित ही था। बालकृष्ण शर्मा के पिताजी बाद में नाथद्वारा चले गये, माँ और बालकृष्ण भी साथ ही गये। पिता जमुनादास जी तो भक्तिभाव और सेवा पूजा में मगन हो गये। अतः जीविकोपार्जन के लिए बालकृष्ण की माँ जो अर्जित करती, वही इन तीन प्राणियों की उदर-पूर्ति का सहारा था। यहीं बालकृष्ण की विधिवत् शिक्षा का आरम्भ हुआ।

नवीन जी कुशाग्र बुद्धि के थे। विद्यार्थी-जीवन में खूब खेलना, खूब ऊधम मचाना तथा बालकों के साथ प्रसन्न रहना और किंचित क्वचित उनका नेतृत्व करना, उनके प्रमुख कार्य थे। वे एक प्रसन्न बालक थे, जो अभावों के बीच भी प्रसन्न रहना जानते थे। बालकृष्ण की रुचि नाटकों में अभिनय करने में भी पर्याप्त रूप से थी। उन्होंने अपने छात्र-जीवन में कतिपय नाटकों में अभिनय भी किया था।

शाजापुर में अंग्रेज़ी मिडिल स्कूल की परीक्षा पास करने के पश्चात् हाईस्कूल की शिक्षा के लिए बालकृष्ण शर्मा उज्जैन आ गये और माधव महाविद्यालय से सन् 1917 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उज्जैन आने के बाद नवीन जी में गाम्भीर्य आने लगा और वे इसी उम्र में भारतीय दर्शन की ओर आकृष्ट हुए। यद्यपि विद्यार्थी-काल में एक नटखटपन उनमें था, परन्तु इसके साथ ही वे मेधावी भी थे।

सन् 1916 में बालकृष्ण 'लखनऊ कांग्रेस' के अधिवेशन में गये। उज्जैन में वे इस समय दसवीं कक्षा के छात्र थे। 'लखनऊ' जाने के लिए उन्होंने अपने दोस्तों से कुछ रुपये उधार लिये। एक लोटा, एक कम्बल, एक धोती और एक डण्डा बस, केवल इतना सामान लेकर वे लखनऊ पहुँचे। लखनऊ का प्रवास बालकृष्ण के लिए सर्वाधिक प्रेरणास्पद था। यहाँ कई महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों से उनकी भेंट हुई। माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त और गणेशशंकर विद्यार्थी की भेंट ने बालकृष्ण शर्मा को साहित्यिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों का दर्शन प्रदान किया। विशेषतः विद्यार्थी जी का प्रभाव और प्रेरणा ने एक प्रकार से उनकी जीवन-धारा ही बदल दी। विद्यार्थी जी

ने नवीन जी को नए आयाम और नयी दिशाएँ प्रदान की। इसी अधिवेशन में नवीन जी ने लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू आदि लोकनायकों के दर्शन किए। बालकृष्ण शर्मा नवीन पर अपने पिता के, माता के, तथा मित्रों के जो संस्कार पड़े, उसने उन्हें जीवन भर आस्थावान बनाए रखा। बचपन से नवीन जी पर उनकी माता के जो संस्कार पड़े, उन संस्कारों ने बालकृष्ण के मन में संगीत के प्रति अनुराग भर दिया। उन्होंने लिखा है कि "माता मुझे गोद में लिटाकर मीठे-मीठे विहाग के स्वरों में अष्टछाप के पदों को गाकर मुझे लोरियाँ सुनाती और सुलाया करती थी।" (*साहित्यकारों की आत्मकथा,* पृ. 83)

बालकृष्ण शर्मा की रुचि पठन-पाठन में प्रारम्भ से ही थी। शाजापुर में रहते हुए उन्होंने कविताओं की बहुत-सी पुस्तकें पढ़ डालीं। 'सरस्वती' एवं 'प्रभा' जैसी पत्रिकाओं ने उनके मन में साहित्यिक चेतना का स्फुरण किया था और बालकृष्ण ने इन्हीं पत्रिकाओं के प्रभाव से तुकबन्दियाँ करना भी 10-12 वर्ष अवस्था से ही प्रारम्भ कर दिया था। कालान्तर में वे अपनी रचनाओं को 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ भेजने लगे। उज्जैन आ जाने पर उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं को बड़े चाव से पढ़ा और प्रभावित भी हुए। वह समय विवरण-प्रधान कविता का था। उज्जैन में आकर उनके जीवन में कई आयामों को गति प्राप्त हुई।

बालकृष्ण शर्मा ने अपना उपनाम 'नवीन' रखा। यह उपनाम पहली बार उनके द्वारा लिखी गई एक कहानी 'सन्तू' में प्रयुक्त हुआ। यह कहानी सरस्वती (1918) में छपी थी, जिस पर लेखक का नाम सिर्फ़ 'नवीन' उपनाम दिया गया था।

माधव कॉलेज़ उज्जैन में अध्ययन करते हुए 'नवीन' जी के मन में राष्ट्रीय चेतना के बीज अंकुरित होने लगे थे। नवीन जी दृढ़ निश्चयी थे। लखनऊ कांग्रेस में भाग लेने के बाद उनका मन देश-सेवा के लिए आतुर रहने लगा था। वे उज्जैन में ही देश-सेवा के लिए, राष्ट्र को गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए जोशीले भाषण भी यदा-कदा देने लगे थे। स्वयं नवीन जी ने लिखा है कि—"एकबार सभा में मैंने एक भाषण दे डाला। साथी-संगियों ने उसे बड़ा पसंद किया। पर शिक्षक लोगों ने काफी खबर ली। भारत की ज़ंजीर ज़ुबान से नहीं, बल्कि कठोर कर्मठ भावनाओं से ही टूटेगी। देश-सेवा के लिए अपने को तैयार करो। उस वक़्त तो यह बात ज़हर-जैसी कड़वी लगी, पर बाद में अक़्ल आई और मैंने अपने गुरुजनों की बातों की सत्यता को अनुभव किया।" (*साहित्यकारों की आत्मकथा,* पृ. 93) नवीन जी ने इन

दिनों समाचार पत्रों से भी देश-विदेश की जानकारी प्राप्त की और इससे लगातार उनका राजनीतिक चिन्तन-पक्ष समृद्ध होता गया। 'प्रताप' अपने समय का प्रखर पत्र था, जिसमें गणेश शंकर विधार्थी ने अपनी सम्पादकीय लेखनी और अन्य सामग्री के द्वारा अंग्रेजों से मुक्ति का जीवन्त वातावरण समस्त हिन्दी प्रदेशों में निर्मित किया था। 'प्रभा' के तो नवीन जी ग्राहक ही थे। सन् 1917 में नवीन जी ने मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली तो उन्होंने आगे पढ़ने के लिए अपनी माँ से आज्ञा माँगी। नवीन जी की आर्थिक स्थिति कुछ ठीक नहीं थी, अतएव माँ के इनकार करने पर नवीन जी ने कहा, 'जीजी, भगवान की झारी तू भर, मैं तो अब भारत माता की झारी भरूँगा और इस जीवन को देश-हित में समर्पित करूँगा।' (वीणा, अगस्त सितम्बर 1960) इसके पश्चात् नवीन जी कानपुर पहुँच गये। वहाँ उन्हें गणेशशंकर विद्यार्थी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। नवीन जी एक बार देश-सेवा के लिए जुटे तो जुटे और अन्ततः उन्होंने अपना सब कुछ देश-सेवा के लिए समर्पित कर दिया।

कानपुर आकर उनकी लेखनी धीरे-धीरे 'प्रताप' के लिए कुछ लिखने लगी। धीरे-धीरे उनकी रचनाएँ प्रकाश मे आने लगी। 'प्रताप' के लिए वे कविताएँ लिखने लगे। छन्दों और तुको का ज्ञान उन्हें था ही, लय और संगीत उनके मन में रचा-बसा था। फलतः उन्होंने अधिकतर गीतों की ही रचना की। लेखन के क्षेत्र में भी गणेशशंकर विद्यार्थी ही उनके प्रेरणा-पुरुष थे।

कानपुर के साहित्यिक समाज में नवीन जी शीघ्र ही घुलमिल गये। साहित्यिक मण्डली में नवीन जी वहुत लोकप्रिय थे। गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों में उनका कविता-पाठ प्रभावशाली हुआ करता था। वे अक्सर गाकर गीत सुनाते थे। उनका कंठ मधुर और आवाज़ 'सुरों' के अनुकूल थी। वे अपने ढंग के अनोखे गीत-गायक थे। उनके गीतों में प्रमुख रूप से वेदना, पीड़ा, निवेदन-आमन्त्रण तथा करुणा के भाव थे। वे कानपुर की तद्‌युगीन 'नागरी प्रचारिणी सभा' से भी सम्वद्ध रहे। कानपुर में ही उनका परिचय मुन्शी प्रेमचन्द से हुआ, जो बाद मे घनिष्टता में परिणत हुआ।

राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में नवीन जी जीवन भर सक्रिय रहे हैं। सन् 1921 के असहयोग-आन्दोलन से उनका राजनीतिक जीवन आरम्भ हुआ और वे लगातार परतन्त्रता के विरुद्ध जूझते रहे। उनका यह जूझना तब तक चलता रहा, जब तक कि भारत ने स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर ली। महात्मा गाँधी के आह्वान पर उन्होंने कॉलेज की पढ़ाई छोड़ दी और सत्याग्रही

बन गये। महात्मा गाँधी के अहिंसक असहयोग के समय नवीन जी अपने व्याख्यानों के द्वारा बहुत लोकप्रिय हो गये थे और लिखना-पढ़ना छोड़ दिया था, इसी कारण उन दिनों वे 'कानपुर के शेर' कहे जाने लगे थे।

असहयाग-आन्दोलन सम्पूर्ण विश्व में गुलामी से मुक्ति के लिए एक अभिनव प्रयोग था। सन् 1920 में यह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, पर इसके साथ ही क्रान्तिकारी अवधारणा का भी भारतवर्ष में अपना स्वरूप था। सन् 1930 के आसपास असहयोग-आन्दोलन की क्रान्ति फीकी पड़ गई थी। इस समय तक बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी का कविरूप पूरी तरह उभरकर सामने आने लगा था और उनकी 'विप्लव' शीर्षक कविता—**'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये'** जैसी क्रान्तिकारी अवधारणा और गहन चिन्तनपरक रचना का प्रकाशन नवीन जी की अवधारणा को स्पष्ट रूप से रेखांकित करने वाली रचना थी। सन् 1920 में 'प्रताप' का दैनिक संस्करण प्रकाशित हुआ, नवीन जी 'प्रताप' से जुड़े हुए थे ही, इस समय उन्होंने 'प्रताप' में अपने लेखों के माध्यम से स्वतन्त्रता की चेतना को अभूतपूर्व गति प्रदान कर लोगों को प्रेरणा प्रदान की। नवीन जी सन् 1930 तक राजनीतिक और सामाजिक कार्य में पूरी तरह से समर्पित भाव से जुड़ गये थे। कानपुर में सन् 1931 के हिन्दू-मुस्लिम-दंगे में गणेशशंकर विद्यार्थी सम्प्रदायवाद की बलि चढ़ गये। भीतर तक आहत हुए नवीन जी के ऊपर एक साथ ही कई उत्तरदायित्व आ पड़े, जिनमें सर्वप्रमुख तो नवीन जी के सर्वस्व विद्यार्थी जी के कार्यो को पूरा करना था। विद्यार्थी जी का परिवार अब एक प्रकार से उनका ही परिवार हो गया था। 'प्रताप' अख़बार का पूरा दायित्व भी नवीन जी के कन्धों पर आ पडा। राष्ट्रीय आन्दोलन में कितनी ही बार वे जेल गये। सन् 1942 में उन्हें पकड़ने का वारंट कानपुर में निकल गया था और यह ख़बर भी जोरों पर थी कि हुकूमत ने गिरफ़्तारी का आदेश दे दिया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए नवीन जी ने त्याग, तपस्या और जीवट का जो परिचय दिया था, वह आज भी अनुकरणीय है। वे प्रारम्भ से ही भारतीय काँग्रेस के एक वफ़ादार सैनिक के रूप में जुड़े रहे और अपने सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन में वे काँग्रेस के वफ़ादार सैनिक बने रहे।

बालकृष्ण शर्मा को अपने राजनीतिक जीवन में छः बार कारावास की यात्रा करनी पड़ी तथा उनके जीवन के नौ वर्ष कारावास की सीखचों के भीतर व्यतीत हुए। उन्होंने जेल के इन वर्षों को व्यर्थ नहीं जाने दिया, बल्कि इस समय का बहुत ही सार्थक एवं मूल्यवान उपयोग किया। इस समय का उपयोग उन्होंने पठन-पाठन और लेखन के लिए किया। लखनऊ-

कारावास में भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रेरित होकर शेक्सपियर के लेखन को भी उन्होंने पढ़ा और समझा। फर्रूखाबाद-कारावास में उनका अधिक समय पुस्तकों के पठन-पाठन में ही व्यतीत होता था। फ़ैज़ाबाद-जेल में वे भारतीय दर्शन की ओर उन्मुख हुए तथा श्रीमद्भगवद्गीता का विशेष अध्ययन किया। जेल-जीवन में नवीन जी ने सन्त-कवियों को जमकर पढ़ा और समझा। सन्त-काव्य का प्रभाव भी उनकी रचनाओं में प्रभूत मात्रा में विद्यमान है। अपनी विभिन्न जेल-यात्राओं और कारावास में 'नवीन' जी का संग-साथ उस समय के प्रख्यात राजनीतिज्ञों के साथ रहा। ऐसे महत् व्यक्तियों में पं. जवाहरलाल नेहरू, श्री महादेव देसाई, पुरुषोत्तम दास टण्डन, कम्युनिस्ट पार्टी के अजय घोष, सुप्रसिद्ध चिन्तक डा. सम्पूर्णानन्द आदि प्रमुख थे। उनकी युवावस्था का अधिकांश समय क़ैदख़ानों में व्यतीत हुआ, किन्तु इस अवकाश-काल का उपयोग उन्होंने अधिकतर अध्ययन, चिन्तन एवं मनन में किया, जो उनकी साहित्य-साधना के लिए अमूल्य वरदान साबित हुआ। जेल-जीवन के कष्टों को सहन करते हुए नवीन जी ने निराशा को कभी अपने पास फटकने नहीं दिया। नवीन जी देश के सिपाही और राष्ट्र के सपूत थे। उनके जैसे वीर सपूतों के त्याग और बलिदान तथा महात्मा गाँधी के निर्देशन एवं मार्गदर्शन के फलस्वरूप ही भारतवर्ष गुलामी की ज़ंजीरों को तोड़कर स्वतंत्र होने के लिए समर्थ हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् नवीन जी संविधान परिषद् के सदस्य मनोनीत हुए। नवीन जी गृह मन्त्रालय सम्बन्धी समिति, सूचना-प्रसारण-समिति तथा रेलवे वित्त-समिति के सदस्य भी रहे। संविधान-परिषद् के सदस्य के रूप में नवीन जी ने इंग्लैण्ड तथा यूरोप के अन्य देशों का भ्रमण कर नवीन ऊर्जा ग्रहण की, नवीन अनुभव प्राप्त किए। सन् 1952 में वे कानपुर से भारतीय लोक-सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। नवीन जी का प्रौढ़ काल अच्छा नहीं बीता। सन् 1957 में उन्हें लकवा मार गया। इसी कारण द्वितीय निर्वाचन के अवसर पर उन्हें राज्य-सभा का सदस्य चुना गया। सन् 1968 में उन्हें पुनः राज्य-सभा का सदस्य चुना गया, किन्तु चुने जाने के एक माह बाद ही वे अनन्त में लीन हो गये। वे अपने अन्तिम दिनों में निराश से हो गये थे—जीवन से, भारत की स्थिति से भी और सरकारी कार्य-कलापों से भी। उनका दिल्ली-अधिवास उनके लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुआ। उन्होंने 08-20-56 के एक पत्र में लिखा था कि "भारत के लिए बेकारी अभिशाप है। पता नहीं सरकार शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन क्यों नहीं करती ? अफ़सोस है अंग्रेज़ गये, पर हमें मानसिक गुलाम बनाकर छोड़ गये। आज का भारत दासता का भारत है। यहाँ के लोगों की ज़िन्दगी करने के

लिए नहीं खाने के लिए है, फिर भी खाना नहीं मिलता। चारों तरफ़ अकर्मण्यता का साम्राज्य है, काहिली का बोलवाला है, काम करना कोई नही चाहता, मौज़ उड़ाना सभी चाहते हैं।'' (*साप्ताहिक आज,* 29 मई 1960 पृ. 10) प्रौढ़काल में नवीन जी का झुकाव दर्शन की तरफ़ होता चला गया। वे आस्थावान पुरुष थे।

नवीन जी का गार्हस्थ्य जीवन सुखमय नहीं रहा। किशोरावस्था में ही उनका विवाह सन् 1916 में हो गया था। उनका यह विवाह शुजालपुर के श्री रामपाल महाराज की सुपुत्री के साथ हुआ था, किन्तु द्विरागमन के पूर्व ही उनकी पत्नी का देहान्त मायके में हो गया। एक प्रकार से यह विवाह नहीं के बरावर था। उन्होंने ज़िन्दगी का लम्बा सफ़र प्रायः एकाकी ही व्यतीत किया था। यह कहा जाता है कि कानपुर में रहते हुए उन्हें एक लड़की से प्रेम हो गया था। दोनों विवाह के लिए तैयार भी थे, किन्तु लड़की के पिता ने अपनी पुत्री को समझा-बुझाकर और फुसलाकर एक धनी वाप के बेटे से विवाह करने के लिए तैयार कर लिया। नवीन जी उस लड़की से मिलने गये और उसे पुराने वायदों की याद दिलाई तो उसने उत्तर दिया—'तुम तो रोज़ जेल काटते फिरोगे, मैं क्या घर बैठी भाड़ झोंकूँगी' नवीन जी यह उत्तर सुनकर वापस लौट आये। (*कल्पना,* सितम्बर 1960, पृ. 18)

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने फिर यह प्रतिज्ञा कर ली कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक मैं विवाह नहीं करूँगा, भारत को गुलाम सन्तान की भेंट नहीं दूँगा। (अपलक, पृ. 16) 6 जुलाई 1949 को नवीन जी के जीवन में सरला जी आई। सरला जी का परिचय नवीन जी के जीवन की एक घटना थी। नवीन जी गॉधी जी की अस्थियों को विसर्जित करने के लिए इलाहाबाद गये। गाँधी जी का अस्थिकलश एक सैनिक ट्रक पर रखा हुआ था। भारी भीड़ थी। इतने में नवीन जी ने देखा कि एक युवती भीड़ के रेले को सहने में असमर्थ है। फलतः उन्होंने उसे अपने हाथों से खींचकर ट्रक पर चढ़ा लिया। कुछ दिनों के बाद सरला ने नवीन जी को धन्यवाद देते हुए पत्र लिखा। नवीन जी ने भी सहज भाव से पत्र का उत्तर दे दिया। सरला ने उन्हें दो-तीन पत्र लिखे। कुछ दिनों बाद सरला अपने पिता के साथ दिल्ली आ गई। सरला के पिता प्रोफ़ेसर थे, पिता ने विवाह का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव ही विवाह में परिवर्तित हो गया। नवीन जी ने इस विवाह के सन्दर्भ में अपने एक मित्र को कहा था कि ''तुम जानते हो अपनी ज़िन्दगी तो औघड़-आवारा रही है, अब इन साध्वी पत्नी के पुण्य से शायद वह तर

जाये।" (*साप्ताहिक आज* 29 मई 1960, पृ. 9) नवीन जी कभी गृहस्थ रहे ही नहीं, सारा जीवन संघर्षों में बीत गया। वे स्वतन्त्रता के पुजारी, देशभक्त राष्ट्रनायक थे। उनका गार्हस्थ्य जीवन एक प्रकार से असफल ही सिद्ध हुआ। उन्होंने इसी भाव को अपनी एक कविता में इस प्रकार अंकित किया है—

क्या मिला ? नहीं कुछ भी तो मिला यहाँ मुझको,
जीवन यह एक मिला था वह भी खो बैठे,
क्या ही विचित्र लीला है किसी खिलाड़ी की
हम एक भले थे, किन्तु व्यर्थ दो हो बैठे।

(*साप्ताहिक हिन्दुस्तान,* श्रद्धांजलि अंक, पृ. 40)

वे ग्यारह वर्ष गृहस्थ रहे। पर 1948 से 1960 तक के बारह वर्ष उनके भीतर से टूटने का कालखण्ड था। उनका जीवन कुण्ठाओं से भर गया था। एक संघर्षशील, फ़क्कड़ व्यक्ति का यह दुखान्त-पर्व था। उनकी निम्नलिखित पक्तियाँ अपने इस जीवन को बेबाक ढंग से प्रस्तुत करती है। देखिये।—

मैंने तोड़ा जो फुल्लकुसुम तो क्या देखा ?
उसके अन्तर में एक भयानक तक्षक है।
मैंने सोचा मैंने कब ऋषि-अपमान किया ?
जो मुझको मिला परीक्षित जीवन-भक्षक है।
मैं कितना हूँ सर्पाभिभूत कुछ मत पूछो ?
औ तक्षक मुझसे लिपटे बैठा है ऐसे,
जैसे मैं हूँ चन्दन की कोई एक छड़ी।

एक तो ढलती आयु में विवाह दूसरे रुग्णता तथा तीसरे निराशा सबने एक साथ नवीन जी को घेर लिया। नवीन जी पर सन् 1950-51 में एक बार हृदय-रोग का आक्रमण हो चुका था, किन्तु सन् 1955 के बाद वे श्वास-कष्ट से भी पीड़ित रहने लगे थे। सन् 1956 में उन पर भयानक पक्षाघात का आक्रमण हुआ। कई महीनों तक अस्पताल मे रहे, कुछ ठीक होने पर घर आ गये। सन् 1959 में पुनः पक्षाघात हुआ, पुनः अस्पताल रहे और कुछ ठीक होने पर घर आ गये। सन् 1959 के अन्त में उनका स्वास्थ्य फिर गड़बड़ा गया। वे फिर चिकित्सालय गये। वस्तुतः सन् 1956 से सन् 1960 तक नवीन जी विभिन्न रोगों से जूझते रहे। अन्तिम समय में वाणी ने और फिर स्मृति ने भी उनका साथ छोड़ दिया। उनकी खीझ, कुण्ठा, निराशा और असमर्थता बढ़ती गई। उनकी कंचन-काया धूमिल हो गई। 29 अप्रैल 1960 को दोपहर तीन बजे उनका शरीरांत हो गया। एक संघर्षशील योद्धा का यह करुण अन्त हृदयविदारक था।

नवीन जी-जैसे लोग मानवता के उन्नायक और शृंगार होते हैं। उन्होंने अपना सब कुछ देश और समाज को अर्पित कर दिया। बालगंगाधर तिलक, और महात्मा गाँधी उनके प्रेरणा-स्रोत थे। गणेशशंकर विद्यार्थी उनके गुरु, सखा, मित्र, तात सभी कुछ थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। इनमें उनके तीन आयाम प्रमुख हैं। प्रथम आयाम तो उनके स्वतन्त्रता-सेनानी का है, द्वितीय पत्रकारिता का और तृतीय साहित्यकार का। उनके तीनों आयामों ने मिलकर जिस व्यक्तित्व का निर्माण किया था, उसका नाम था—बालकृष्ण शर्मा नवीन। उनके ये तीनों आयाम शिखर-स्पर्शी थे। वे द्रष्टा और स्रष्टा दोनों थे। उन्होंने कभी मकान नहीं बनवाया, मीनारें नहीं खडी की। वे आस्था पुरुष थे, पर वे स्वयं अनिकेतन ही थे। उनकी एक कविता है—

'हम अनिकेतन, हम अनिकेतन'

3

काव्य

1. कथात्मक काव्य

बालकृष्ण शर्मा नवीन जिस परिवेश में पले-पुसे, वह ग्राम्य परिवेश था तथा जिस परिवेश को उन्होंने कर्मक्षेत्र बनाया, वह महानगर था। भीतर से नवीन जी सम्पूर्णतः कवि थे। कर्म से वह जनजागरण के अग्रदूत, स्वतन्त्रता-संग्राम के सैनिक तथा पत्रकार थे। एक ओर अपनी मान्यताओं में आर्य संस्कृति के पक्षधर थे, अद्वैतवादी थे और उस पर गहरी आस्था रखते थे। दूसरी ओर उनका अन्तस् प्रेम से परिपूरित, रागात्मक संवेदना से लबालब तथा भारतीय जीवन से गहरे रूप में सम्पृक्त था। भारतीय चेतनावादी दर्शन उनकी रगों में विद्यमान था। भौतिकवाद का सर्वथा तिरस्कार भी उन्हें स्वीकार नहीं था। इतना अवश्य है कि उनके स्वीकार और अस्वीकार की पृष्ठभूमि में गहरा सोच-विचार है। स्वभाव से वह कबीरदास थे, देह-दृष्टि मे गन्धर्व। कर्म में वह योगी थे पर जीवन-व्यवहार में देहाती थे। मित्रता में वह सहृदय थे और सिद्धान्त में समन्वयवादी।काव्य में (Classical) शास्त्रीयतावादी और (Romantic) रोमानी अथवा स्वच्छंदतावादी का उनमें अनुपम योग था।

उर्मिला महाकाव्य उनके अपने जीवन का ही साक्षात्कार है, इसलिए कि लक्ष्मण उनकी निजता का प्रतीक है। गणेशशंकर विद्यार्थी एक प्रकार से उनके लिए राम थे और अपने इस राम के वह अनन्य लक्ष्मण थे। इसीलिए वह कर्मयोगी थे। उनका विवाह 52 वर्ष की उम्र में हुआ, पर उनका हृदय लक्ष्मण के समान ही प्रेम और योग से लबालब था। वह विद्रोही थे, संघर्षशील थे, साहसी थे और विनोदी थे। भारतीय गृहस्थ-धर्म और परिवेश को ही उन्होंने अपनाया था और सम्पूर्ण देश की बनावट और बुनावट में वह आर्य-संस्कृति

की विद्यमानता के पक्षधर थे।

एक ओर उनमें क्लासिक कवि की सर्जना की क्षमता थी तो दूसरी ओर उनमें रोमेण्टिक कवि के भी सभी गुण विद्यमान थे। उनके अन्तस् में कई विराधीभाव एक साथ रहते हैं। किसी भी रचनाकार की अस्मिता की पहचान उसके चिन्तन, ज्ञान और रागात्मक संवेदना से होती है। वे पदार्थवाद, श्रेणी-भेद, वर्ग-भेद, वर्ण-भेद—यों कहें कि समस्त भेदों को चीरकर वह अभेद पर स्थित होना चाहते हैं। *उर्मिला* महाकाव्य इसी अभेद-तत्त्व की व्याख्या करता है। भारतीय दर्शन .का सिद्धान्त-पक्ष अपनी पूरी व्यवहारवादिता के साथ अनुस्यूत होकर इस महाकाव्य का मूलकथ्य बनता है। महाकाव्य की प्रचलित अवधारणा है—बाह्य विवरण और घटना-संयोजन तथा इन्हीं दोनो के माध्यम से क्रिया-प्रतिक्रियाओं-द्वारा चरित्रनिर्माण। नवीन जी ने नवीन प्रयोग के माध्यम से महाकाव्य को बाह्य विवरण और घटना-संयोजन, यहाँ तक कि चरित्र-चित्रण से भी मुक्त कर दिया। महाकाव्य-परम्परा में यह प्रथम सवेदनामूलक, रागात्मक भावोत्पन्न एवं अन्तस्मूलक काव्य है। उन्होंने परिपाटी विरहित होकर महाकाव्य को मानवीय अन्तस् के साथ सम्बद्ध कर उसे विराटता में प्रस्तुत किया है। इसीलिए इस महाकाव्य का प्रत्येक पात्र महत् पात्र है। यहाँ तक कि रावण भी, जो कि सिद्धान्ततः भौतिकवादी है, अधूरेपन को ग्रहण कर भी महत् व्यक्ति है, हो सकता है। राम, सीता, लक्ष्मण उर्मिला तो महत् हैं ही, क्योंकि इनके द्वारा ही आर्य-संस्कृति का प्रचार होता है।

उर्मिला का रचनाकाल सन् 1921 से 1934 तक है। सन् 1922 में इसका प्रथम सर्ग सम्पूर्ण हो चुका था। हिन्दी-साहित्य में इस समय तक प्रसाद, पन्त, निराला नये ढंग की रचनाएँ लिख रहे थे। इनमें महाकाव्य प्रसाद और पन्त ने लिखे, किन्तु क्लासिक कवि तो सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ही हैं। छायावादी खेमे के बाहर समानान्तर रचनाकारों में माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि का अभिगम छायावाद के निकट है, जबकि क्लासिक कवि तो बालकृष्ण शर्मा नवीन ही हैं।

उर्मिला के प्रथम सर्ग की संरचना पर हरिऔध की रचना-शैली का प्रभाव प्रतीत होता है। उसी प्रकार की संस्कृतबहुल हिन्दी भाषा का प्रयोग, वैसा ही संस्कृत वर्ण का प्रयोग और कुछ-कुछ शैली भी वही। एक उदाहरण :

रम्योद्यानों मय यह पुरी शोभती यों अनूपा
मानो कोई नवल तरुणी गोद मुग्धा, सरूपा
क्रीडोत्कण्ठामय चपलता की हठीली तरी-सी
फूलोंवाली हरित लतिका से सजी वल्लरी-सी।।

उर्मिला काव्य की संरचना केवल इसी शैली में नहीं है। आगे चलकर प्रथम सर्ग के मध्य में नवीन जी इस शैली से मुक्त होकर मैथिलीशरण गुप्त की रचना-शैली से प्रभावित प्रतीत होते हैं। यथा—

जब दोनों वेणियाँ परस्पर उड़कर जुट पाती हैं।
तब कृष्णा यमुना की गुँध दो धाराएँ जाती हैं।
या दो कुहा निशाएँ करती आलिंगन लुब्धा हो
या दो परछाही हैं भुजभर भेंट रही मुग्धा हो।

वस्तुतः प्रथम अध्याय शिल्प की खोज का अध्याय है। नवीन जी अपनी भाषा का मुहावरा भी खोज रहे हैं और संरचना का शिल्प भी। कथ्य के बारे में वह लेखन से पूर्व ही निश्चिंत अथच निश्चित हो चुके हैं। प्रथम सर्ग में नवीन जी सीता और उर्मिला का वर्तमान वर्णित करते हैं। उन दोनों के स्वभाव की व्याख्या करते हैं और उनके जीवन के भविष्य का संकेत भी करते हैं। अतएव 'पुर प्रदक्षिणा' जनकपुरी की होती है। मुझे लगता है कि नवीन जी कुटुम्ब-परिवार के कवि है। आपसी सन्दर्भों और सम्बन्धों की गहरी पहचान उन्हें है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो वे इन सम्बन्धों की प्रस्तुति में गहरे मनोविश्लेषक का रूप ही धारण कर लेते हैं। कथा के लिए कथा लिखना नवीन जी को अस्वीकार है। जीवन के व्यवहार (भौतिक) और आदर्श (चेतना) को वह अपनी प्रस्तुति का आधार बनाते हैं। भविष्य-संकेत वह दो कहानियों से देते हैं। एक कहानी सीता कहती है और दूसरी कहानी उर्मिला। एक कहानी राजा-रानी की है और दूसरी कपोत-कपोती की। एक में एक राजा दूसरे राज्य की कन्या का अपहरण करने के लिए आक्रमण करता है, किन्तु परास्त होता है। दूसरे में कपोत आत्म-चिन्तन के लिए कपोती से दूर चला जाता है और कपोती विरह में बिलखती है तथा प्राण त्याग देती है। दोनों ही कहानियाँ मोहक हैं और दोनों के संकेत भी स्पष्ट हैं। कपोत की कथा पर चर्चा करती हुई सीता कहती है, मैं होती तो कबूतर के साथ चली जाती, किन्तु उर्मिला कहती है 'वह कबूतरी बड़ी मृदुल थी, वह हठ कैसे करती ?' उर्मिला और कपोती स्वभाव से समान हैं। नवीन जी का संरचना-शिल्प यहाँ तक आते-आते अपना निजी शिल्प भी पा जाता है और भाषा भी प्राप्त कर लेता है। एक सर्जनात्मक भाषा की कुशलता इसमें है। विवरण-प्रधान कथ्य भी इसके कारण संचेतित हो उठे हैं। प्रत्येक रचनाकार को यदि वह रचनाकार है तो अपनी सर्जनात्मक भाषा की खोज करनी ही पड़ती है। बहुतों को यह मिलती भी नहीं है। जिन्हें मिलती है, उन्हें भी प्रतिभा और अभ्यास से ही मिलती है। नवीन जी प्रतिभा

के धनी थे, जबकि निरन्तर अभ्यास उनके जीवन भर की धुरी थी। अतएव छायावाद-युग में जहाँ कई लोग भाषा फींच-फाँच रहे थे, वहीं नवीन जी भाषा से कथ्य की चेतना को उद्‌भूत कर उसे अपनी रागमयी संवेदना से संस्कारित भी कर रहे थे।

बाल-जिज्ञासा और उसकी कौतूहल वृत्ति को नवीन जी ने सूझबूझ से रचा है। बाल-जिज्ञासा की सहजता इस प्रकार है। उर्मिला का कथन अपनी माता से :

तात चरण के आने पर तुम क्यों मुसकाती हो माँ ?
मुखपर क्यों लाली आती है यह तुम बतलाओ माँ ?

उत्तर है :—

जिन नियमों से अग्निशिखा में लाली आ जाती है।
जिन नियमों से प्राची, सुन्दर अरुणाभा पाती है।
उसी नियम से जनक देव से मैं यहाँ आन मिली हूँ।

××

अब तुम समझी, जैसे प्राची में लाली आती है।
त्यों तब तात चरण के आते लाली छा जाती है।

प्रथम सर्ग के अन्त में लिखा है—श्री 'लक्ष्मणार्पणमस्तु' इस सर्ग में लक्ष्मण की कोई चर्चा नहीं है। वस्तुतः इस अर्पण के द्वारा भी वह अभेद की ही स्थापना करते हैं। द्वितीय सर्ग का प्रारम्भिक भाग गीतात्मक है। अयोध्या के उल्लास को अभिव्यक्त करते हुए नवीन जी बारम्बार आर्य-धर्म की प्रतिष्ठा की बात करते हैं। उनका आदर्श है।

जागरूकता जीवन धन है
सत्याचरण आत्म चिन्तन है
निश्चल होकर जगज्जनों की
सेवा ही प्रभु का वंदन है।
न्याय तुला के दोनों पलड़े आठों याम समान रहें,
बहिर्जगत में, अन्तर्तम में ऐक्य भाव का ध्यान रहे।।

पहले ही कहा जा चुका है कि रामकथा कहना कवि का लक्ष्य नहीं है। यहाँ भी वस्तुतः सीता और उर्मिला के व्यक्तित्व की रेखाएँ इस सर्ग में उभारी गयी हैं। नवीन जी इस सर्ग में राग की व्यंजना आवेश-आवेग, किन्तु मर्यादा के साथ करते हैं। वे लक्ष्मण और उर्मिला के प्रणय-दृश्य, नवविवाहित दम्पति के शरीर-धर्म और शृंगार के चित्रण करते हुए भी प्रेम के बारे में एक सुचिन्तित पीठिका प्रदान करते हैं। वस्तुतः यह प्रेम केवल शरीरधर्मा ही नहीं है, इसमें

माधुर्य भी समाविष्ट है, किन्तु विवाह का मूल तो अभेदत्व ही है।

आर्य धर्म में यह वैवाहिक बन्धन परम धर्ममय है
दो आत्माओं का मिश्रण है—अभिन्नत्व की जय-जय है।

भारतीय सहकुटुम्ब के हास-परिहास के बीच नवीन जी गम्भीरतम प्रश्न उठाते हैं और उनका उत्तर भी देते हैं। कला, कविता, कविता की रचना-प्रक्रिया, आध्यात्मिकता आदि के बारे में कितने ही प्रश्नों का समाधान कवि ने किया है। संवादों की चटुल योजना नवीन जी की विशेषता है और इन संवादों के बीच-बीच में अनुभावों की योजना भी वह सहज रूप से करते हैं। प्रेम क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में नवीन जी ने कई पृष्ठों में चर्चा की है। यह विस्तार काव्य के लिए उपयुक्त नहीं है, फिर भी नवीन जी का चिन्तक मन बहुत ही विचक्षण है। उनका उद्देश्य कथा-गायन नहीं है। वह चिन्तन और संवेदन के कवि हैं। तृतीय अध्याय वन-गमन का है। वन जाने का उद्देश्य महत् है। करुण रस प्रधान होते हुए भी यहाँ बैठे-ठाले का वियोग नहीं है। आर्य-धर्म की संरचना ही नवीन जी को काम्य है।

नवीन जी मूलतः विरह और प्रेम के गायक हैं। इस महाकाव्य का चतुर्थ सर्ग 'विरह-मीमांसा' शीर्षक से रचा गया है। कवि के अनुसार विरह सारे विश्व में व्याप्त है। जहाँ तृतीय सर्ग में वन-गमन के पूर्व का अनुभववृत्त है, वहीं चतुर्थ सर्ग वन-गमन के बाद के अनुभववृत्त का आलेखन है। अनागत का अनुभव और विरह की प्रतीति तो इन सर्गों में है ही, पर भाव और ज्ञान का सम्यक् विधान इस रचना को महत्ता और महत्त्व प्रदान करता है। *साकेत* में कथा बहुल विवरण का आधिक्य है, जबकि *उर्मिला* में भाव और ज्ञान का प्रत्यक्षीकरण और मूर्तीकरण है। विरह एक निचाट सूनापन ही नहीं देता, कई प्रश्नों को भी उपस्थित करता है। यथा—

कुछ है, है कहीं, कहीं, कहाँ है ?
क्या है ? कितना ? कैसा ?
जिनने पाया वे कहते हैं :
वह बस इतना, ऐसा।।

इस सहजता से विरह साकार होता है, जो बुद्धि को कुरेदता है। इसके साथ-ही अनुभूति की मार्मिकता इस प्रकार है—

अति रिक्त-रिक्त-सा हिय है
सूना-सूना जीवन है।
सूना ही जीवन-पथ है।
सूने ही जीवन के क्षण हैं।

यदि दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो विरह यों है—

अक्षर से क्षर प्रकटा है,
निर्गुण से सगुण हुआ है,
वह एक अनेक बना है,
वह विगुण, सुनिपुण हुआ है,
अब सगुण, अगुण होने को—
यों अकुलाता है छिन-छिन
क्षर-अक्षर में मिलने को
दिन बिता रहा है गिन-गिन
अपनापन पा जाने की
है यही एक आकुलता
खट-खट निशिदिन होती है
देखें यह पर कब खुलता ?

इस आकुलता की पुकार इस प्रकार है—

पर, प्यास नहीं बुझती है
लग रही आस की फाँसी
आ जाओ अलख खिलाड़ी
तुम डाले गलबहियाँ-सी,

विरह की यह व्यथा स्वतन्त्र रूप से कलियों, फूलों, पत्तियों, वृक्षों, लताओं, जग के अन्य स्थान, जड़-चेतन सभी जगह भिन्न-भिन्न रूप में अभिव्यक्त हो रही है। इस व्यथा का किंचित् प्रकटीकरण आँसू से होता है और इसी कारण आँसू भी सर्वत्र हैं।

कुछ पक्तियाँ और—

शाखाओं में हहराती
बह रही निमन्त्रण करुणा
नव किसलय दल के मिस से
कँप उठी वेदना अरुणा

यह जीवन सिसक निराली
अभिव्यक्त हो उठी छिन-छिन
यह क्षणिक चेतना रोई
पूरन अनन्त जीवन बिन।

चिर जीवन का आवाहन
करते शतियाँ बीती हैं
वृक्षों, पत्तों को आहें
भरते शतियाँ बीती हैं।।

विहंगों में इसका रूप उनकी बोलियों से निःसृत होता है। नवीन जी का विरह प्रभु का अंश है, जो अंशी की खोज में अनवरत है।

नवीन जी दोहे लिखने में अद्वितीय हैं। इस छोटे से छन्द का सफलता पूर्वक प्रयोग और निर्वाह करनेवाले वह एकाकी सर्जक हैं। यदि यह प्रतिपादित किया जाये कि सर्जनात्मक चेतना उनके दोहों में बिहारी से भी अधिक है तो शायद अत्युक्ति न होगी। बिहारी विवरण के और बाह्यता के कवि हैं तो नवीन जी मानवीय मनोभावों के कवि हैं। एक में कलात्मक सूक्ष्मता है तो दूसरे में भावात्मक चेतना। एक वाह्य रूप-सज्जा का कवि है तो दूसरा हृदय के आलोड़न-विलोड़न का। *उर्मिला* का पंचम सर्ग इसका प्रमाण है। इसके अलावा भी उन्होंने दोहे लिखे हैं, जो प्रकृति से उनकी अंतरंग चेतना के प्रतिफलन हैं। उनका बड़ा प्रसिद्ध दोहा है—

हम विषपायी जनम के सहै अबोल कुबोल
नैकु न मानत अनख हम जानत अपनो मोल

उर्मिला का सम्पूर्ण चित्र तो वियोग में ही परिलक्षित है—

छुट्यो संग सपनो, मिट्यो लघु संयोग अभिशाप,
चिर वरदान वियोग को मिल्यो आपु की आप।
चले जाहु भोरे सजन, अनबोले सकुचात
हिय की हिय में रह गई नैकु न निकसी बात।

पंचम अध्याय की सत्ता, स्वतन्त्र रूप से एक विरह काव्य की भी हो सकती है। इस अध्याय में विरह से सम्वन्धित सब कुछ है। ऋतु-वर्णन है, प्रकृति-वर्णन है, विरह की सभी दशाएँ हैं, जीवन के विरहगत घात-प्रतिघात हैं, मानवीय क्रिया-प्रतिक्रियाएँ है, पर यह सब कुछ नवीन का अपना है, न तो पिष्टपेषित और न ही अनुकृत, सम्पूर्ण विरह कहीं भी स्खलित नहीं होता, उसकी अपनी उदात्तता है और इस सबके अन्तस् में है, भारतीय मनीषा का दर्शन, जो द्वैत पर भरोसा नहीं करता, जीवन में एकत्व और समत्व को प्रतिष्ठित करता है। कथा इस अध्याय में नहीं है, विरह है और विरह की अपनी इयत्ता कितने ही महाकाव्यों का प्रतिरूप है। कतिपय दोहों से उक्त अवधारणा और भी स्पष्ट हो सकेगी।

मुरि जनि देखहु तुम इतै, हे सुकुमार कुमार।
अरुझि जाइंगे दृग, इहाँ बिछे साँस के तार।।

एक सम्पूर्ण रूपक के द्वारा इतनी कलात्मक अभिव्यंजना नवीन जी का सर्जक मन ही कर सकता है। 'नट' का एक रूपक द्रष्टव्य है—

विपिन बिहारी हौ नटी, तुम नर सुघर प्रवीण।
मोबिन कैसे होउगे रंग-मंच रसलीन।।
सूत्रधार तुम, सुनट तुम, तुम नाटक के प्राण।
हौं प्रवीण नट नागरी रस भावना प्रधान।।
अहो तनिक ठाड़े रहो बांह झटकि जनि जाहु।
निभृत नृत्य शाला मई, आहु सजन गृह आहु।।
जीवन नाटक के परे, रीते अंक अनेक।
आवहु खेलहु तुम इतै छिटकावहु स्मित रेख।।

भावों को सूक्ष्मता से प्रस्तुत करना दोहों की विशेषता मानी जाती है। देखिये—

सपने की खिरकीन ते कब हूँ तो प्राणेश।
झाँकि देखि जायो करो, अर्धचेतना देश।।

विरह में सम्पूर्ण प्रकृति भी इसी भाव से सम्पृक्त हो उठती है। वर्षा के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं,

मो अंगना फुहियाँ बरसि, सुइयाँ सी चुभि जायँ।
घनछहियाँ बहियाँ पकरि, लाई विरह बुलाय।।
जल बरसत कसकत हृदय भारी-भारी होय।
बरसावत मद रंग कोउ, धन चूनरी निचोय।।
सिहरि-सिहरि रहि जात है वायु विडोलित पात।
त्यो उसाँस ते कंपत है, रोम-रोम अति गात।।

चिन्तन के कण दोहों में इसी सन्दर्भ में इस प्रकार है—

शून्य रूप है के तुम्हें कैसे पावों नाथ।
मेरे या लघु अहं को करो सनेह-सनाथ।।
एक रूप है के कहहु कैसे करिये प्रेम ?
प्रेमी, प्रेमिक एक, तब कितै नेह को नेम ?
दरस पिपासा जो मिटे तो यह कैसो नेह ?
बरसावहु प्रिय द्वैत को रिमझिम-रिमझिम मेह।।

रात कवियों के लिये भिन्न-भिन्न रूप में आती है, वियोग में सूर कहते हैं—'पिय बिनु नागिन कारी रात।' नवीन जी कहते हैं—

पिय इन कारे छिनन में, तिय हिय अति अकुलाय।
मौन रुदन मन करि रह्यो तुम्हें बुलाय-बुलाय।।

और भी—**निशा बनू हो तुम बने निबिड तिमिर धन प्राण**
झुकि छाबहु है के गहन गहर गम्भीर महान।

पनघट की स्थिति लोकसाहित्य का प्राण है। पनघट लोक संस्कृति का अंग है। नवीन जी इस पनघट को विरह से इस प्रकार जोड़ते है।—

मम नागरिया गगरिया, भई आज निस्तब्ध।
काँकरिया मारहु करहु झन झंकृतमय शब्द।।
बड़े दिनन तैं, जतन तै, बड़ी दूरतै नाथ।
हौ आवतु हौ घट लिये, या को करहु सनाथ।।

व्यंजना नवीन जी के दोहों को प्राणवंत बनाती है। व्याख्या करना तो स्थानावरोध के कारण सम्भव नहीं है, पर उदाहरण कितना, क्या अभिव्यक्त करते हैं, यह तो आपके सामने ही है—यथा—

निशि तें दूनी प्रात में, बढ़त विरह की पीर।
दिन तें दूनी, रात में, जियरा होत अधीर।।

सूर्य, समुद्र, नदी, लहर, प्रभात, संध्या, दोपहर आदि के अनोखे मार्मिक बिम्बों का एक सहज प्रवाह नवीन जी के दोहों में समाया हुआ है। चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता और व्यंजनात्मकता इन दोहों में समन्वित है, जो विरह-राग को अपनी सम्पूर्ण सच्चाई के साथ अभिव्यक्त करती है। *उर्मिला* के बहाने वियोग-रस की प्रतीति करवाने में नवीन जी सिद्ध हैं—

हिय सागर तै उठि रही बड़वानल की आह।
प्रिय खैंचहु दोउ भुजन तै अन्तर्तम को दाह।।

बिहारी का मन अधिकतर परकीया में अमर्यादित हो उठता है, नवीन भारतीय गृहस्थ-धर्म के आख्याता हैं, अतः स्वकीया के हृदय की व्यंजना करने में ही उनका मन रमता है। परकीया का चिन्तन उन्हें ग्राह्य नहीं है। यथा—

कितै पिया की नगरिया ? अजहु न जानी जाय।
का जानौ साजन रहे कौन देस में छाय ?
चलिबो-चलिबो रैन दिन, तनिक न रहिये बैठि
अष्टयाम को जागिबो अन्तरतर में पैठि।।
सुनियो घनुटंकार की अनहद धुनि हिय बीचि
करबो मानस अर्चना नयनन ते जल सींचि।।
जिय एतो विश्वास है हिय में एतो आस।
देस तिहारो है कहूँ जहाँ तिहारो बास।।

ऋतु-वर्णन भी नवीन जी ने किया है। है तो यह परम्परित ही, पर मौलिक उद्भावनाओं के साथ नवीन जी का प्रिय विषय प्रेम है। दोहों में उन्होंने प्रेम को मूर्तिमन्त किया है। प्रेम पर लगभग पचास दोहे लिखकर भी कवि तृप्त नहीं हो सका है। शायद प्रेम विषय ही ऐसा है—

प्रेम मौनमय वेदना, प्रेम प्राण की प्यास।
प्रेम हिये में रोइबो अधरन में कछु हास।।
प्रेम चिरन्तन विकलता, प्रेम चिरन्तन आह।
प्रेम सतत अवहेलना, प्रेम दरस ही चाह।।

× × ×

मन मोती को खोइबो, नित्य ठगैबो प्राण।
अनबोले साहिबौ बिथा, यहै प्रेम की कान।।

उर्मिला का यह सर्ग कई अंशों में विशिष्ट है। भाषा के धरातल पर खड़ी और बृज का गलबाहें डालकर चलना मोहक भी है और व्यंजनापरक भी। जीवन के गहरे प्रश्नों को समझने का प्रयत्न भी इसमें है। *उर्मिला* की अन्यतम प्रेम-विरह की वृत्तियों का उद्घाटन भी कवि ने मनोयोग से किया है। दोहों के साथ सोरठों का प्रयोग परम्परा की पहचान के साथ नवीनता की सृष्टि भी है। उर्मिला को कवि ने प्रेम-वियोगिनी के रूप में चित्रित किया है। इस वियोगिनी की प्रेम-तपस्या में विषय-वासना जल गयी है। शुद्ध प्रेम बचा रह गया है। इस योगिनी का चित्र इस प्रकार है—

दग्ध वासना-क्षार की भस्म विभूति रमाय।
ध्यानमग्न जोगिन भई अलख चरण मन लाय।।

प्रेम और योग के अन्तर को भी कवि स्पष्ट करता है—

ज्ञान योग आयास है प्रेम योग अनायास।
एक शून्यमय ध्यान है दूजो दरस विलास।।
अन्तर एतो जानिये प्रेम योग के बीच।
एक चलत मस्तिष्कते दूजो हृदय उलीच।

कहीं-कहीं नवीन आत्म-प्रक्षेप भी कर जाते हैं—

जीवन में सुख-दुख को, देख्यों यहै हिसाब।
भरी मिली दुख की बही, सुख की रिक्त किताब।।

वीणा और मृदंग आदि को केन्द्र में रख, कितने ही दोहों की रचना यह सूचित करती है कि भारतीय चिन्तन के साथ उसका परिवेश, उसका शास्त्रीय राग और उसका लौकिक आचार एक साथ जुड़ा है। संस्कृति को नाच-गाने में ढाल देने की कोशिश इन दिनों ज़ोरों पर है, लोग भारतीय चिन्तन से

इस कदर कट गये हैं, कि वे जानते ही नहीं कि नृत्य हमारे यहाँ चिन्तक की अवधारणा है, जो निरुद्देश्य हाथ, पैर, मुँह आदि की कसरत नहीं है, वरन् जीवन के चरम को पाने का अस्मितागत प्रयास है।

नवीन जी जीवन के मूलभूत प्रश्नों को बारम्बार उठाते हैं और उस पर गम्भीर चिन्तन करते हैं। नवीन जी अनवरत अन्वेषी हैं। यहाँ भी :–

काको कहियत चेतना ? जीवन कहा कहाय ?
कहा तत्त्व या स्फुरण को, जो इत उत चलि जाये।।
जीवन यह नवचेतना, अहै दरस की प्यास।
याही तै उत्क्रमण को, यहाँ प्रवास-प्रयास।।
जा छिन तै वा एक के भए स्वरूप अनेक।
प्रकट्यो ताई समय ते यह चेतना-विवेक।।
चेतनता प्रकटी भली जीवन मिल्यो अनन्त।
जीवन के संग-संग चली दरसन प्यास ज्वलंत।।

नवीन जी ने इस अध्याय में कुल सात सौ चार दोहे लिखे हैं। अर्थात्, एक पूरी सतसई है। इन दोहों में बहुत कुछ है। चिन्तन और काव्य का ऐसा परिपाक अन्य कवियों में कितना है ? कहना कठिन है। नवीन जी में यह परिपाक है और अपनी जगह पर अद्वितीय है :–

बारि नेह को दीयरा, अन्तरि में धरि गोय।
पिय को ढूँढ़न जो चली तो गइ आपुहि खोय।।

छठा सर्ग पूर्णता का परिचायक है। इसके प्रारम्भ में कवि लिखता है 'पूर्ण प्रणाम' राम की वन्दना से इस सर्ग का अर्थ है। यह वन्दना कर्मशील राम के प्रति कवि की विनम्र अञ्जलि है, राम के कर्तृत्व को कवि इस प्रकार लिखता है–

पाप कटा, अन्याय मिट गया
अनाचार का अन्त हुआ
सीता-राम लखन का तप,
जन-मंगल-कर फलवंत हुआ।
कुछ को काल कलित करता है
कुछ करते हैं काल कलित
कुछ को समय चलाता रहता
कुछ करते हैं समय चलित,
काल-प्रवर्तक गति परिवर्तक,
रामचन्द्र ने युग बदला,

लुप्त हो गई त्रेता युग की
घन अज्ञान निशा प्रबला।

कवि रावण के बाद की लंका को चित्रित करता हुआ आसुरी वृत्ति के पश्चात् दैवी वृत्ति के प्रभाव को भी अभिव्यक्त करता है।

लंका में रावण के विवाह के समय भी उत्सव हुआ था, रावण के वध के पश्चात् भी हो रहा है। ध्वजाएँ तब भी फहरायी गयी थीं, आज भी फहरायी गयी हैं। पर कितना अन्तर है कवि के शब्दों में—

ये फहराई थीं उस दिन भी
जब रावण का ब्याह हुआ
और आज भी फहराती हैं,
जब रावण का दाह हुआ।
किन्तु आज की बात और है
आज और ही है आनन्द
आज मुक्ति का मिला सन्देशा
सकल दिशाएँ हैं स्वच्छन्द
वरुण मुक्त है, मुक्त मरुद्गण
वायु मुक्त, उन्मुक्त सभी
अब जग में कोई क्यों होगा
परवश बन्धनयुक्त कभी।
इसीलिए उन्मुक्त पताकाएँ
हर्षित लहराती हैं
विश्व-मुक्ति-सन्देश वाहिनी
ये सब दिशि फहराती हैं।

लंका की व्यवस्था, राज-काज, रीति-नीति की ओर दृष्टिपात करते हुए नवीन जी मानते हैं, कि यह शस्त्र की नहीं शास्त्र की विजय है, सभ्यता की नहीं संस्कृति की विजय है।

यथा—

शब्द-ब्रह्म बन कर, यह लहरा
उठी पताका संस्कृति की
हुई संस्कृति विजय पूर्ण श्री—
आर्य राम की मति धृति की
नहीं शस्त्र-विजिता यह लंका
यहाँ विजय है शास्त्रों की,

यह जय है तापस आर्यों के
शुद्ध शब्द-ब्रह्मास्त्रों की।

राम की तपस्या की अपनी उपलब्धि इस प्रकार है—

जिस जागृति में उदयोद्‌भव है।
जिस जागृति में मति-गति है।
जिस जागृति में वर्तमान की—
निरलस, सजग कर्म-रति है।
जिस जागृति में है भविष्य की,
नव आशा निर्माणों की
जिस जागृति में सुस्पंदन है
चलिता गति है प्राणों की,
जिस जागृति में मोह विनाशक
जागरूकतामय बल है।
भरा हुआ श्री राम नयन में
वही जागरण अविचल है।

राम की यह उपलब्धि नवीन जी को अंग्रेज़ों से समर करते, जेल भोगते प्राप्त हुई है। यह महाकाव्य एक अर्थ में एक सर्जक कवि के ईमानदार संघर्ष का महाकाव्य है, इसकी चिन्ताधारा भारतीय है। इसी भारतीय चिन्ताधारा को मोहनदास करमचन्द गाँधी ने प्रसरित करने की चेष्टा की थी। यह तो बाद का कालखण्ड है कि अपने स्वार्थ के लिए उस महामानव की सभी उपलब्धियों को अतल में डुबो दिया गया और तब से दिशाहीन होकर भटक रहा है।

उर्मिला को केन्द्र में रखकर साकेत की रचना मैथिलीशरण गुप्त ने की है। किन्तु प्रकारान्तर से *साकेत* के केन्द्र में राम ही हैं। जबकि, नवीन जी का *उर्मिला* महाकाव्य उर्मिला को ही केन्द्र में रखता है, अन्य पात्र प्रकारान्तर से आते हैं और शेष हो जाते हैं। वैसे भी यह महाकाव्य विचार प्रधान है और सांस्कृतिक चेतना के सत्य को उद्‌घाटित करने वाला है। नवीन जी भौतिकवादी चिन्तन को अपूर्ण मानते हैं। उनका स्पष्ट मत है :—

भौतिक वाद चेतना विरहित,
है वह निपट निराशावाद
राजस तामस गुणमय वह है
मानव-मन का मत्त प्रसाद

इस जीवन से परे कुछ नहीं,
यों कहते हैं जड़वादी
मनःप्रसाद शून्य है
उनके कर्म नहीं हैं अविषादी

नवीन जी इस भूतवाद के स्थान पर आत्मवाद को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। क्योंकि—

आत्मवाद में है अनन्तता
का अति रुचिर ज्ञान-वैभव,
वहाँ नहीं संचय-संचय का
सुन पड़ता है कर्कश रव।

नवीन जी पुनर्जन्म पर विश्वास करने वाले कवि हैं,

केवल मात्र एक जीवन की
मरणान्त आशा धारे
जग में कर्म-लिप्त होते हैं।
ये जड़वादी बेचारे।
इसीलिये उनके कर्मो में
आत्म विमोहन क्रीड़ा है।
उनके कर्मों में मारण है
नाशन है पर पीड़ा।
इसे भूल जाते हैं ही वे
कि यह जगत तप का फल है।
इस अश्वत्थ वृक्ष का फल है
त्याग भोग तो वल्कल है।

अद्वैत चिन्तन की अभिव्यक्ति इस प्रकार है—

जीवन सच्चिदानन्द रूप है
'मैं' हूँ जगकर्ता-भर्ता
'मैं' हूँ जगनाशक उत्पादक
'मैं' हूँ माया-तम हर्ता।
मैं पा सकता हूँ अपना पद
यदि अपने को पहचानूँ।
'सोहम' यह है सत्य सनातन
यदि मैं निजस्वरूप जानूँ।

इतना ही नहीं, अर्थ की यह अवधारणा कि अर्थ ही प्रगति का मूल है, नवीन

जी को काम्य नहीं है। इस महाकाव्य में अर्थ को केन्द्र में रखकर नवीन जी ने कई पद लिखे हैं। उनकी मान्यता है कि—

न्याय और अन्याय तथा सत्
असत विचार छोड़ कर के,.
प्रचुर अर्थ संचय करते हैं
जड़तावादी जी भर के
नहीं जानते वे कि अन्ततः
ये विचार भ्रममूलक हैं।
प्रगति चिह्न ये नहीं अपितु ये
सत्-संस्कृति-उन्मूलक हैं।

वे मानते है कि मानव-संस्कृति 'अर्थ संचय आबद्ध' नहीं है। उसका विकास तो तप, संयम और नीति में निहित है। संस्कृति सत् है, न्याय है और सुन्दर है। इसी का विकास कवि को काम्य है, राम के राज्य को और राम के संघर्ष को वह भौतिकवादी दृष्टि से नहीं देखता है, वरन् सांस्कृतिक दृष्टि से देखता है। इसीलिए वह तमाम प्रकार के बन्धनों से मुक्ति में ही जीव की सार्थकता देखता है, उदाहरण के लिए :—

सब मेरा-मेरा है, तेरा मेरा, मैं-तू, तू-मैं हूँ।
तू सुख में तब मैं सुख में हूँ, तू दुख में, मैं दुख में हूँ।
× × ×
कोसल नगरी ही लंका है, लंका है कोसल नगरी
भाण्ड हुआ जल राशि निमज्जित भिन्न कहाँ वापी गगरी।

कबीर ने भी इसी प्रकार कहा था 'फूटा कुम्भ जल जलहि समाना' कुछ उसी प्रकार नवीन जी भी कहते हैं। यों भी बाह्य कबीर से नवीन जी की अदभुत समानता है। वही घुमक्कड़ी, वही अक्खड़पन, वही बेलाग कथन और निर्गुण का वही चिन्तन, यहाँ तक कि वही अनिकेतनपन। जीवन कबीर के लिये सतत् युद्ध था। नवीन के लिए भी :—

जीवन सतत् युद्ध है, जीवन
गति है, है जीवन ऐसा
है प्रयत्नमय गुञ्जन जीवन
फिर संघर्षण भय कैसा ?
बाधाएँ अति लंघित करना
है जीवन का मंत्र सदा,
फिर क्यों सत्य प्रचार-पन्थ की
विपदा को समझे विपदा ?

भौतिकता की चाह को नवीन जी, जीवन का विकार मानते हैं, वह भोग और त्याग के सन्दर्भ में भारतीय चिन्तन को ही मान्यता देते हैं। वस्तुतः, इस महाकाव्य का यह अन्तिम सर्ग एक प्रकार से चिन्तन-दर्शन-सर्ग है। अर्द्धनारीश्वर, नरनारायण आदि के मिथकों के रहस्य का उद्घाटन कवि ने सम्पूर्ण गरिमा से किया है। उर्मिला और लक्ष्मण के मिलन पर यह सर्ग समाप्त होता है।

यह मिलन इस प्रकार है—

लखन उर्मिला जब बिछुड़े थे
तब थे दो साधक पथ के,
खूब चले पथ में ये दोनों
बैठे रंच न रंच थके,
अब, जब मिले सिद्ध थे दोनों
आरम्भिक चांचल्य न था,
हृदय मिलन क्षण नयन अजल थे
वहाँ हृदय चांचल्य न था,
नयनों में अति नीरवता थी
वाणी में था मौन परम,
हृदयों में अनुभूति-बोध था
प्राणों में थी शान्ति चरम.

मन ही मन थे लखन निछावर एक उर्मिला की टक पे,
और उर्मिला न्यौछावर थी उनके एक चरण नख पे।

निश्चित ही, हिन्दी की महाकाव्य परम्परा में *उर्मिला* विशिष्ट है। यद्यपि सुधी समीक्षकों ने इस महाकाव्य की चर्चा तो की है, पर पर्याप्त संवेदना नहीं दी। यह काव्य कथात्मक न होकर विचारात्मक है। इस देश की अर्जित जीवंत परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए इसे आगे बढ़ाने और जन-जन तक पहुँचाने के उदात्त भाव से इसकी सर्जना की गयी है। इस बोध के होते हुए भी काव्यात्मक लालित्य का अभाव इसमें कहीं नहीं है। जीवन का व्यवहार और आदर्श दोनों का समन्वय इसकी धुरी है। आधुनिक युग का सारा जीवन-तंत्र भारतीय विचारधारा से हीन धुरी पर खड़ा है। मार्क्सवाद की धुरी अब स्वार्थों के खेमेबन्दी में परिणत हो गई है। सारा देश सिद्धान्तहीन बहस-मुबाहसों में स्खलित होता जा रहा है। इस सांस्कृतिक विच्युति में *उर्मिला* महाकाव्य और भी प्रखर रूप में हमारे सामने आता है और यही इसका

मूल्यवान-पक्ष तथा अनुदान है।

प्राणार्पण नवीन जी का एकमात्र खण्डकाव्य है। इसमें विवरण के भाग की न्यूनता है और चिन्तन की प्रधानता है। कवि का हृदय अपने देश के प्रति रागात्मक बोध से परिपूरित है। अतः देश में उठने वाली हर समस्या के निदान के लिए वह आकुल हो उठता है। इस खण्डकाव्य की मूल समस्या साम्प्रदायिकता की है।

गणेशशंकर विद्यार्थी नवीन जी के सखा, गुरु, तात सभी कुछ थे। उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर नवीन जी देश के प्रति सब कुछ करने के लिए उद्यत हुए थे। कानपुर में साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करने के लिए गणेशशंकर विद्यार्थी ने अपनी आहुति दी थी। यह घटना हृदय द्रावक और सारे देश में कम्पन पैदा करने वाली थी। गाँधी जी का बलिदान और विद्यार्थी जी का बलिदान एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर थे। नवीन जी ने इसी एक घटना को इस खण्डकाव्य में जीवन्त किया है।

नवीन जी ने इस खण्डकाव्य का प्रारम्भ प्रस्तावना से किया है। प्रस्तावना में दो गीत हैं। जिनमें एक ओर तो तद्‌युगीन साम्प्रदायिक विभीषिका को उजागर किया गया है तथा दूसरी ओर गणेशशंकर की कर्मठता और महानता को। दूसरे गीत की ध्रुव पंक्तियाँ हैं—

वह थी एक भयानक होली
भस्म हो गई जिसमें पड़कर
मानव की मानवता भोली...

और अन्तिम पंक्तियाँ है—

मानवता की गंगा जिस क्षण सूख बनी पाषाण प्रणाली,
वत्सलता बन गई कि जिस क्षण प्रलयंकरी क्षुधा विकराली,
जिस क्षण उपज रक्त की लिप्सा नर्तित हुई बज़ाकर ताली,
तब वह नर आता है करने महामृत्यु से हँसी ठिठोली
वह थी एक भयानक होली।

शेष खण्डकाव्य चार भागों में विभाजित है। ये चार भाग प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 'आहुति' शीर्षक से लिखे गये हैं। प्रथम आहुति के अंतर्गत धर्मान्धिता से प्रसूत साम्प्रदायिक हत्याओं का विवरण और धर्म के अधःपतन का विवरण है। प्रथम आहुति में कवि अपने काव्य का उद्देश्य भी प्रस्तुत कर देता है। यथा—

मेरे गणेश की यह गाथा मेरे अग्रज का है अर्चन,
है यह कोई काव्य नहीं यह तो है, केवल मम श्रद्धा-तर्पण,
मैं आज यहाँ जो कुछ भी हूँ है, यह उनका प्रसाद केवल,

अस्तित्व अन्यथा क्या मेरा मैं निपट अकिंचन औ निर्धन,
उनके आत्मार्पण की गाथा गाने का यह प्रयत्न-भर है
मैं इतना जानू हूँ कि यत्न यह है पुनीत श्रेयस्कर है।

विवरण-प्रधान कविता लिखना कठिन और श्रमसाध्य कर्म है। नवीन जी जो विवरण देते हैं, वह मूलतः बिम्ब-प्रधान होता है। ये बिम्ब संश्लिष्ट बिम्ब होते हैं जिसके द्वारा वे भाव का उचित, प्रभावशाली और मोहक ढंग से विनियोग करते हैं जिसके कारण भाषा अर्थवती और रसवती हो जाती है। प्रथम आहुति के बिम्ब अधिकतर करुणभाव के हैं। कतिपय बिम्ब प्रश्न और उद्बोधन बिम्ब हैं। इनकी भाषा प्रसन्न भाषा है, जो प्रसाद और ओज गुणों से सम्पन्न है। इस खण्डकाव्य का अंगी रस करुण है। एक बिम्ब प्रस्तुत है—

था खून लबालब भरा हुआ कोनों गड्ढों में उस घर के
और लम्बे-लम्बे बाल पड़े थे किसी सुकेशी के सर के।

× ×

वे केश रक्त में लथपथ थे, दीवारें थीं शोणित रंजित
कोई कोना भी उस घर का था नहीं दुष्ट कृति से वंचित,
थी पड़ी रक्त में सनी हुई छितरी-बितरी चूड़ियाँ वहाँ
बालोंवाली थी वहिन कहाँ चूड़ीवाली माँ गयी जहाँ,
आँगन में एक कुआँ भी था उसमें दुर्गन्ध भभकती थी,
जो दानवता की घृणित कथा कहते न तनिक भी थकती थी।

इस दृश्य-बिम्ब की प्रतिक्रिया इस प्रकार है—

जगपति जीवित क्यों रखते हैं, नर-पशुओं का खूनी समाज ?
क्यों नहीं गिरा देते हैं ये, हम पाषाणों पर गाज आज ?

इस प्रकार के कृत्यों को कवि 'घृणित धर्म के घटाटोप' कहता है। इस घृणित धर्म के घटाटोप में गणेशशंकर विद्यार्थी की आहुति का स्मरण होना सहज है—

जब धीर आत्म विश्वास हिला, तब आर्य तुम्हारा स्मरण हुआ,
तब चिता याद आयी, आया फिर याद चिता का कृष्ण धुआँ।

कवि के लिए मनुष्य क्षण-क्षण बदलता रहता है। यही उसका सबसे बड़ा त्रास है—

मानव हिय की वेदना यही, मानव का है यह त्रास महा,
करता है पाप-पुण्य निशि-दिन उसके शोणित में रास महा,
क्षण में श्रद्धा, क्षण अविश्वास, क्षण उर्ध्वगमन, क्षण अधःपतन,
क्षण मानवता, क्षण दानवता, यह है मानव का मानवपन।

ऐसे हिंसा के वातावरण में सामान्य मनुष्य के विकार उभर आते हैं और वह निम्नगा वृत्ति में डूब जाता है। कवि मानता है कि यह स्थायी नहीं है।

द्वितीय आहुति में कानपुर नगर का विवरण तथा तद्‌युगीन राजनीतिक परिवेश का वर्णन है। नवीन जी की मान्यता है कि जब-जब देश आगे बढ़ने को तैयार होता है, तब-तब विपरीत शक्तियाँ साम्प्रदायिक दंगे करवा देती हैं। सन् 1931 में गाँधी-इरविन समझौते से अंग्रेज़ सरकार कुछ झुकी थी, यही वह समय था, जब सरदार भगतसिंह और उनके साथी फाँसी पर झूल गये थे। उस समय की स्थिति इस प्रकार थी—

फाँसी पर झूले भगतसिंह, उनके साथी भी झूल गये,
भारतवासी हो उठे क्रुद्ध, वे अपनी सुध-बुध भूल गये।
भड़की घृणाग्नि, उमड़ी ज्वाला, आवाज लगी हड़ताल हुई,
विद्रोह जगा, उठ पड़ा त्वेष जनता की आँखें लाल हुई।
उन्मत्त विजातियों के प्रति उठ भड़का क्रोधानल अपार,
भारत का शान्त महासागर उफ़ना उसमें आ गया ज्वार।

इस स्थिति का लाभ भारत नहीं ले सका, क्योंकि अंग्रेज़ महाप्रभु की चालाकियों ने सम्प्रदाय का ज़हर फैला दिया। यथा—

वे शहंशानियत के पुतले, जिनका है सब दिन यही काम
लड़वाते हैं इन्सानों को लेकर मज़हब का पाक नाम
कारिन्देशाही ने सोचा है, यही आत्मरक्षा का पथ
धार्मिक झगड़े होते जायें और चलता जाये जीवन-रथ
उसने जनता का त्वेष प्रबल परिवर्तित कर डाला क्षण में
अन्यों के प्रति जो रहा क्षोभ वह बदला आपस के रण में।

अंग्रेज़ों के बहकावे में सारा देश पुनः गृहयुद्ध की स्थिति में आ गया—

बाज़ीगर ने डोरी खींची पुतलियाँ काठ की नाच उठी,
बाज़ीगर ने मन्तर फूँका धार्मिक बलवों की आँच उठी,
जनगण बोले कि स्वत्व लेंगे बाज़ीगर बोला छू मन्तर,
औ, नृत्य हुआ रणचण्डी का जनगण के घर ही के अन्दर,
हम इन्द्रजाल में फँसे हुए, हैं गुज़री शताब्दियाँ यों ही,
हम खूब लड़े हैं, माँगा है, स्वत्वाधिकार हमने ज्यों ही।

नवीन जी ने इस साम्प्रदायिकता का मार्मिक चित्र इस प्रकार दिया है—

मस्जिद और बाजे झगड़ पड़े लड़पड़े ताजिए औ पीपल,
मज़हबों, धर्म में मतवाले भिड़ पड़े सैकड़ों दल के दल।

इस प्रकार के अन्धे वैमनस्य में सबकुछ नष्ट होता रहा है। यही इस देश का दुर्भाग्य है—

गाँधी के पुण्य प्रयत्नों से फैला था जो जागरण प्रवल।
वह नष्ट हो गया कुछ क्षण में हो गये प्रयत्न सभी असफल।

हम पहले कहीं कह चुके हैं कि नवीन जी का काव्य चिन्तनपरक काव्य है। वह सोचने के लिये बाधित करता है। यह सर्ग समस्या भी देता है और समस्या के निदान के लिए भूमि भी प्रस्तुत करता है।

तृतीय आहुति में गणेशशंकर विद्यार्थी की मनोवेदना और उद्विग्नता का चित्रण है।

यदि नर को पशु बनते देखे वह नरवर गणेश शंकर,
तो सोचो उसकी आकुलता ओ लघु प्राणी नरतनधर।

कवि की यह मान्यता है कि—प्रागैतिहासिक काल से ही है "रक्त मांस मय' 'नर-कर-काज'। वह हिंसा को मानवी स्वभाव से प्रसूत मानता है। यथा—

मानव का क्या दोष ? रक्त की लोलुपता स्वभावजा है,
नाश, बुद्धि, हिंसा प्रवृत्ति तो, नर की स्वयं आत्मजा है !

इन पंक्तियों के अन्त में विस्मयादिबोधक चिह्न यह भी इंगित करता है, कि अपनी इस मान्यता पर कवि को किंचित् सन्देह है, किन्तु कवि फिर अपनी मान्यता की पुष्टि में तर्क देता है। काल में विष बुझे बाण हैं, ताम्रकाल में भी मृत्युदायक शस्त्रों की कमी नहीं है। मनुष्य युगों-युगों से 'शोणित पायी है' उसकी मन-वाणी हिंसक है और उसकी विजय-लालसा हिंसा की ही अभिव्यक्ति है। सुदूर इतिहास-काल से मनुष्य को ऐसा प्रतिभासित होता रहा है कि उसे सभी ओर से दानव घेरे हैं। सम्भवतः इसी के कारण आत्मरक्षा-निमित्त वह पूर्णतः हिंसादक्ष बन गया। किन्तु, गणेशशंकर इस मान्यता के पक्षधर नहीं थे। 'उनने नर को सतत् सनातन दिव्य ज्योतिर्मय' समझा था। वह कानपुर के साम्प्रदायिक दंगों से अत्यधिक व्याकुल थे। उनका एक बिम्ब इस प्रकार है—

दिन बीता चौबीस मार्च का, निशि आई चिन्ता लेकर,
दिन के थके गणेश पधारे कृश शरीर ले निज घर पर।
चूर-चूर था दुर्बल तन औ लोकोत्तर हिय जर्जर था,
मन में ग्लानि भरी थी उनके, देख जनों की बर्बरता।
डेढ़ दिनों से शहर कानपुर, था विभीषिका क्रीड़ासक्त,
धधक रही थी चंड होलिका और वह रहा था नर रक्त।

कानपुर की स्थिति इस प्रकार थी—

उमड़ रहे थे आसमान में सघन धुएँ के दल-बादल,
लपटों की शोणित तूली से रंजित था दिशि का काजल।
नर-नारी निशिचर शृंगाल-सम करते थे हा-हा, हू-हू
सघन ध्वंसकारी ज्वालाएँ उठ-उठ करती थी धू-धू,
शंख-ध्वनि भी कहीं-कहीं, थे नारे 'अल्लाहो अकबर'
भीति त्रस्त था निखिल कानपुर, काँप रहा था हर पथ पर।

कानपुर की इस दारुण स्थिति में गणेशशंकर का मन और अधिक विकलता का अनुभव कर रहा था। घर आने पर वे 'सजल नयन जर्जर तन, उन्मन म्लान वदन अतिमूकवचन' थे उनके मन में प्रश्नों का सैलाब उमड़ आता है। वह सोचते हैं, क्या सचमुच में मनुष्य दानव है ? क्या वह स्वभाव से पापी और अन्यायी है ? ये सारे प्रश्न उन्हें मथते रहते हैं। फिर वह उत्तर देते हैं—

मन का क्रमिक विकास स्वयं है, सबल प्रमाण अहिंसा का
उसने कब उन्नति की है, जिनका है स्वभाव प्रतिहिंसा का ?
भालू, शेर, भेड़ियों ने कब निज समाज निर्माण किया ?
उनने सामूहिक स्नेह का कब-कब भला प्रमाण दिया ?
नर का सामूहिक विकास है, क्रमिक अहिंसा का द्योतक
उसका ज्ञान विवेक मात्र ही है, उसकी उन्नत का बोधक।

इस पूरे अध्याय में हिंसा और अहिंसा को केन्द्र में रख कर एक तर्क-शृंखला का नियोजन कवि ने किया है। इसी शृंखला में वह अकबर की याद भी करता है—

वह न चल सका, हाय रह गया स्वप्न अधूरा अकबर का
और विप्लवों ने कर डाला नाश हमारे घर भर का

गणेशशंकर विद्यार्थी इस अवसर पर अपना कर्त्तव्य-सा स्थिर करते प्रतीत होते हैं। वह सोचते हैं कि 'आज सर्व भक्षक निमिषों में कैसे बैठ रहूँ चुपचाप'। इसी प्रकार का चिन्तन करते हुए वह यह निश्चय करते हैं:

नर संहार कराल व्याल को अपने वश करना होगा,
उसके फन की फुफ्कारों से ज़रा नहीं डरना होगा।
मरना और उतरना होगा महामृत्यु के घाट मुझे,
यदि सामाजिक दावानल यह मेरे यत्नों से न बुझे।

इस खण्डकाव्य की यह तृतीय आहुति गणेशशंकर विद्यार्थी की आत्मार्पण की मानसिक तैयारी की व्याख्या है। जीवन की अनश्वरता, मृत्यु का भय, संशय,

सन्देह और व्यथा आदि कितने ही बिन्दुओं को इस सर्ग में गहराई से समझने-समझाने का प्रयत्न किया गया है। काव्य और चिन्तन की यह पारस्परिकता नवीन जी की सर्जना की धुरी है। वह शब्दों के व्यर्थ के अपव्यय पर विश्वास नहीं करते हैं। वरन् जीवन में अनुभूत, आदर्श और प्रयुक्त आदर्श पर ही उनकी आस्था है। नवीन जी सत्याग्रह-युग के आलोक स्तम्भ थे, वह भारतीय चिन्तन के पक्षधर थे और चेतना की अमृतमयता पर विश्वास करते थे। वस्तुतः, चेतना के सत्य के साक्षात्कार के लिए अविरल प्रयास ही उनके जीवन का केन्द्र था। गणेशशंकर विद्यार्थी से यही दिशा उन्हें प्राप्त हुई थी। यह विवरण किन्तु, चिन्तनप्रधान काव्य इसका प्रमाण है।

चतुर्थ आहुति इस काव्य का उत्कृष्ट खण्ड है। जीवन की ऊँचाई और अपने लक्ष्य के लिए प्राणों के उत्सर्ग की यह गाथा ओज और करुणा से परिव्याप्त मार्मिक वृत्तचित्र है। इस सर्ग के प्रारम्भ में ही गणेशशंकर की कर्मप्रेरक मूर्ति का चित्र इस प्रकार है–

निज अस्थि पुंज का बनाए दीप्त अग्नि-कुण्ड
किए प्रज्वलित नव आत्म हुताशन ज्वाल,
हिय में अगाध स्नेह भर, भर नयनों में
नर के नारायण स्वरूप की छटा विशाल।
शंकर गणेश घर छोड़, मुँह मोड़ चले
उनकी अभीति देख, सहमा कराल काल
अर्पित की उनके अडिग धीर चरणों में
होके प्रणत मानवता ने निज भक्ति माल।

× × × × ×

शुभ्र वस्त्र खद्दर के, नग्नसिर, हँसमुख,
कृशतन-तेजोमय लोचन, प्रसन्न रूप,

गणेशशंकर अप्रतिहत आस्था और कर्म के प्रतीक हैं। कानपुर में हिंसा के दावानल को शान्त करने का उन्होंने जीवन की बाज़ी लगाकर यत्न किया। वह घर से चले तो स्थिति नारकीय थी। 'जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ मिली विभीषिका, मिले क्रोधमत्त द्वेष ग्रस्त छल छन्द'। इस समय जब गणेशशंकर दृढ़चित्त आगे बढ़े, तब लेखक की उक्ति है–'निकल पड़े वे लोक आराधक जिस क्षण। फीकी पड़ी लोक संग्रह की परिभाषाएँ' उन्होंने हिन्दू बस्ती में से मुसलमानों का उद्धार किया। उस समय गहराइयों से उठते हुए चिन्तन को कवि इस प्रकार अभिव्यक्त करता है–

मैं हूँ कौन ? यह है या वह स्वरूप मेरा ?
मैं हूँ क्या ? क्या यह जो आये हैं लगाए खून ?

मैं हूँ क्या ? यह जो धर्मदीन की सुरक्षा हित
करके कुतर्क नित बनता हूँ अफलातून ?
मेरा क्या स्वरूप यही कि मैं नित खाया करूँ
अपना ही अंग-अंग भंग कर भून-भून ?
कोई बतला दो कि मैं क्या-क्या हूँ, और क्या-क्या हूँ न ?

सारे परिवेश के द्वन्द्व को इन आठ पंक्तियों में बाँध कर अभिव्यक्त करना कवि की कुशलता है। नवीन जी ओज और कर्म के लिए और भीतरी अनवरत राग के लिए अपने कविकर्म में और देशकर्म में सदैव रसे-मसे रहे। वास्तविक रूप में उनके जीवन में राग की कमी न बुझने वाली आग थी। वह मानवीय दुर्बलताओं और सबलताओं के द्रष्टा थे। जहाँ एक ओर हिंसा में सब कुछ झुलस रहा था, वहीं दूसरी ओर एक अकुण्ठित मानव संवेदनात्मक राग से भरकर अपने को होम करता हुआ इस झुलसन से मुक्ति के लिए सतत् प्रयासवान था। यह द्वन्द्व ही जीवन की असली पहचान है।

गणेश जी ने 'रक्त फाग' खेली ! उन्होंने मुसलमानों के घेरे से हिन्दुओं को मुक्त किया और हिन्दुओं के घेरे से मुसलमानों को। एक छोटी-सी घटना भी इसी बीच संयोजित है। हारे-थके प्यासे गणेशशंकर पागलों की नाईं इधर-उधर बचाव के लिये दौड़ रहे थे, तभी एक वृद्धा ने उनसे अपने यहाँ पानी पीकर थोड़ा विश्राम करने को कहा। इस पर गणेशशंकर ने कहा—

माता इस हत्यारे मोहल्ले में पिऊं जल
छुऊँगा न प्राण रहते मैं जल चुल्लू भर,

वह कहते हैं—

अपने इन बच्चों से कहो कि ज़रा
एक क्षण भर अवलोकें अपने को तो !

वह माँ यह सुनकर आँसुओं से भींग गयी। गणेशशंकर आँधी की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचते रहे। कवि उनकी इस यात्रा पर लिखता है—

मानव परम्परा की अंकित हुई है रेख
शंकर गणेश के अडिग धीर चरणों से।
ऐसी ही समाश्रयों से बढ़ेंगे मानव आगे
जानेंगे वे अपने को इन्हीं उपकरणों से

जब होंगे निज दुर्भावनाओं से पदाक्रान्त
तब उठेंगे ऐसे ही उदाहरणों से
यही ज्योति रेखा है, जो आयेगी अधीमी नित्य
होके पार जड़ता के सघन आवरणों से।

नवीन जी और भी कहते हैं—

जिनके फटे हैं वस्त्र, जिनके न पास शस्त्र
एक शस्त्र जिनका है दृढ़ आत्म-विश्वास,
झंझावात में भी ज्योति जिनकी अडिग रहे
जिनका समान रहे नित श्वास निःश्वास,
युद्धरत कर्मरत सेवारत जिनके हैं
जीवन के प्रतिक्षण, दिन, प्रतिवर्ष, मास,
ऐसे ही जनों से जग-जन करते हैं
नवल विधान के सन्देशे की सतत् आस।

कवि की उक्ति है कि विद्यार्थी जी जैसे लोग शताब्दियों में अवतरित होते हैं। उन्होंने तो 'निर्भय हो मृत्यु पाहुने को' आमन्त्रण दिया था। इतिहास में ऐसे लोग कम हैं। भले ही उनके स्मारक न बने पर वे जन-जन में अलक्षित रूप से सदैव विद्यमान हैं। अन्त में, वह एक मुस्लिम मोहल्ले में आये। मुसलमानों ने कहा—

"हम है बहुत मशकूर आपके जनाब
आपने निभायी आज सच्ची इनसानी आन
जाकर बचाए हम मज़हब हमारे वे
आपने बुलन्द की यों सच्ची मज़हबी शान
खूब मौके से खूब वक्त से आ पहुँचे आप
वर्ना मिट जाता उन सबका नामोनिशान
आपके बग़ैर सब काम ही बिगड़ जाता"
—कहने लगे यों सब बूढ़े और नौजवान।

इस चतुर्थ अंश में नवीन जी ने कवित्त का मनोरम प्रयोग किया है। मैंने यह छन्द इसलिए भी उद्धृत किया है कि नवीन जी की इस भाषाई धज को भी महसूस किया जावे। नवीन जी जहाँ वृज के लेखन में सिद्ध थे, वहाँ चलताऊ भाषा में भी। उनमें भाव-वैविध्य तो है ही, भाषा-वैविध्य भी कम नहीं है। यहाँ भी सौ-सवा सौ नर-नारियों को गणेशशंकर जी ने मुक्त किया, किन्तु इतने में ही और एक झुण्ड (हिंसक) उमड़ आया। एक मुस्लिम युवक ने गणेशशंकर को भाग जाने के लिए प्रेरित किया, पर गणेशशंकर

ने कहा 'खेत छोड़ भागना है कायरता और पाप' कवि वर्णन करता है—

भाले तने लाठी उठी, छुरे भी चमक उठे
किन्तु श्री गणेशशंकर के हिय में भय क्लेश था न

अघटित को तो घटित होना था। वह इस प्रकार हुआ—

हैं... हैं... करते ही रहे कुछ लोग इतने में
भाला भोंक दिया किसी एक ने कमर में
और किसी दूसरे ने गाजी बनने के लिए,
दौड़ एक हुमक के लट्ठ मारा सर में।
गहरा के भूमि पर गिर पड़े श्री गणेश।
देह छोड़ प्राण उड़ चले नीलाम्बर में।
भूमि पे गणेश देहपात हुआ, याकि हुआ
मानवीय धर्म का निपात हुआ क्षण में।

कवि इस खण्डकाव्य का अन्त इस प्रकार करता है—

उड़ चले प्राण अन्तरिक्ष में विषाद भरे
अपने ही बन्धुओं की क्रूर कृति अवलोक
मृत्यु-द्वार खोल मोल आँक चले जीवन का
छिटकाते सघन तिमिर में प्रचंडालोक।

प्राणार्पण नवीन जी के आदर्शों का खण्डकाव्य है। इसमें जीवनी का कोई हिस्सा नहीं है। केवल तद्‌युगीन परिवेश, धर्मान्ध मानसिकता और गणेशशंकर के आत्म-बलिदान का ओज और प्रवाह तथा प्रभावपूर्ण चित्रण है। विवरण-प्रधान होते हुए भी यह काव्य चिन्तन की भावभूमि पर स्थित है। गणेशशंकर विद्यार्थी अपने युग की प्रेरणा थे। उन्होंने जीवन भर निष्ठा और आस्था के साथ कर्म किया। उनकी मृत्यु में और जीवन में गाँधी का आदर्श ही मूर्त्तिमंत हुआ है। प्रतीकों, बिम्बों और रूपकों का आश्रय लेकर चिन्तन को काव्य-रूप में परिणत करने का कार्य नवीन जी ने किया। नवीन जी ने इस काव्य में शुद्ध और प्रांजल खड़ी बोली का प्रयोग किया है। हिन्दी का ऐसा परिमार्जित और सहज रूप उन दिनों के काव्यों में कम ही देखने को मिलता है।

2. मुक्त काव्य

नवीन जी ने कथात्मक काव्य अधिक नहीं लिखा है। वह मूलतः गीतकार हैं। गीत के बारे में पश्चिमी मान्यता है कि गीत आत्मपरक, वैयक्तिक और

एकान्तिक रूप से निजी काव्य-विधा है। हमारे यहाँ गीत दोनों प्रकार के होते हैं। विषय-प्रधान भी और विषयी-प्रधान भी। इतना अवश्य है कि गीति-काव्य में अनुभूति का पथ अधिक होता है। यों देखा जाये तो सम्पूर्ण साहित्यिक विधाएँ अनुभूति-प्रधान ही होती हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें चिन्तन नहीं होता।

भारतीय अवधारणा तो समन्वय की अवधारणा है। इसीलिए भारतीय दृष्टि ने काव्य से चिन्तन को बहिष्कृत कभी नहीं किया है। तुलसीदास की *विनय-पत्रिका* और सूरदास का *सूरसागर,* जहाँ एक ओर अनुभूतिमूलक हैं, वहीं उनमें चिन्तन की एक विशिष्ट पद्धति भी समाई हुई है। इस चिन्तन-पद्धति को अनदेखा कर देने पर काव्य का मर्म ही बाधित हो जाता है। नवीन जी के गीतो में भी एक विशिष्ट चिन्तन है। इसे जाने बिना हम उनके गीतों का मर्म जानने से वंचित ही रह जायेंगे।

उनका पहला कविता-संकलन 'कुंकुम' शीर्षक से सन् 1939 में प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका में नवीन जी ने लिखा है कि 'बहुत दिनों के बाद आज मेरी चन्द पुरानी तुकबन्दियाँ संग्रह के रूप में आपके सामने आ रही हैं। ये बहुत पहले लिखी गयी थीं। इस संग्रह की कविताएँ या तो प्रेमपरक हैं या देशभक्ति और राष्ट्रीय बोध एवं भारतीय चिन्तन से परिपूरित हैं अथवा वैयक्तिक आत्माभिव्यजक कविताएँ हैं।

इसमें तीन कविताएँ तीन महापुरुषों के प्रति कवि की श्रद्धांजलि हैं। ये महापुरुष हैं—ऋषि दयानन्द, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी और महर्षि द्विजेन्द्र ठाकुर। ये श्रद्धापरक रचनाएँ भी एक प्रकार से राष्ट्रीय कविताएँ ही हैं।

प्रेम और शृंगार के गीतों में जीवन के प्रति गहरी आसक्ति और आकर्षण की तीव्रता के भाव मार्मिकता से उकेरे गये हैं। नवीन जी वास्तव में प्रेम और शृंगार के कवि हैं। इतना अवश्य है कि यह प्रेम बहुआयामी और वैविध्यपूर्ण है। भाई-बहन, प्रिय-प्रिया, जन और देश, यहाँ तक कि संस्कृति-प्रेम, देश-प्रेम और मानव-प्रेम तक प्रेम को विस्तारित करते हैं। भाई-बहिन के प्रेम का प्रतीक इस देश में राखी है। नवीन जी के एक गीत 'रक्षा-बन्धन' की कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

हल्के-हल्के बहिन निभा लेना
मेरे इस नाते को
तन-मन है बाँधो राखी मुझे
श्री-विहीन सकुचाते को

गीली कर दो राखी प्यारी
बहिन प्यार वह आने दो
अपने निष्कंचन भाई को
उसमें अब बह जाने दो।

नवीन जी के अधिकतर गीत मिलन और विरह को लेकर हैं। इन गीतों में देहगन्ध भी है और देहगन्ध के पार जाने की लालसा भी। 'प्रेयसी में भावों की मुग्धा-सी व्रीड़ा' और 'माधुरी चंचलता की रमणमयी क्रीड़ा' है। पान तो प्रेम का प्रतीक है ही।

लिये पान आता हूँ, मन
चरणों में खो जाता है।

यह चरणों में खोना विशिष्ट है। यही विशिष्टता नवीन जी के प्रेम-गीतों को भी विशिष्ट बनाती है। ऐसा नहीं कि प्रेम ने हृदय को उद्विग्न न कर दिया हो।

कवि की उक्ति है—'मची खलबली हुआ हृदय में छोटा-सा विस्फ़ोट सखी' यह इसलिए हुआ कि प्रिया तो झलक दिखाकर ओट हो गयी और उसे किसी बहाने देखने से मन में लहरें उठने लगीं यथा—

अब तो फेंकी, अब न फेंकना
अपनी क्रीड़ा की कंकरी
छलक उठेगा नीर हृदय में
जगह बहुत ही है सँकरी।

यह मात्र एक झिलमिल कवि को उसकी स्मृति में उलझा देती है तथा उसकी 'जीवन-कृति' में चिन्ताओं की छाप लगा देती है। कवि अपनी सुध-बुध बिसरा देता है, उसे प्राप्त करने की उद्दाम लालसा और सर्वस्व-अर्पण की चाह जाग जाती है। परन्तु 'हाय' लोकापवाद पथ का बन्धन हो जाता है। इन प्रेम-गीतों में प्रकृति का चेतन स्वरूप अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित हुआ है।

इस संकलन में तीन रचनाएँ ब्रज भाषा में है—'यांचामोघा' 'निगोड़ी हवा' और 'गुइया प्रीत को मरम'। अपनी मधुरता और मार्मिकता में ये बेजोड़ हैं। 'यांचामोघा' में मानवती नायिका से मान तोड़ देने की याचना है—

मेरे ढिग बैठी रहो नेह को संजोय दीप
मान जनि करौ सजनि, लाज का सिकोरो छोरि।

लाज लगने पर प्रिया अपने करों से मुख को आवृत्त कर लेती है। तब नायक का कथन है,

कोमल सरोज कर से, मुख-चन्द्र ढाँको जनि
आज खुलि जाइबे दो, हिय की मृदुल मरोर।
एक मुसक्यान, एक छिन वा छटा को दान,
नेहि की विभूति मोह देहु करि कृपा की कोर।

'निगोड़ी हवा में' हवा के प्रति उलाहने हैं। यह हवा कहीं गहरे में सालती है, क्योंकि वह 'उढ़के हुए किवाड़' खोलकर प्रीति का रहस्य उजागर कर गयी है।

उनके फूल चढ़े मेरी नदिया उतराई भली नई
उढ़के हुए किवाड़, निगोड़ी हवा खोल के चली गई।

'गुइया प्रीति को मरम काहू को बतैयो ना' गीत में एक सखी दूसरी को प्रीति की रीति बतलाती है। 'दिन दोपहरी वा गलिया में कबहूँ ऐयो जैयो ना' इन गीतों में रीतिकाल की झॉंई भी है और नवीन प्रेम की उन्मुक्तता भी है। नवीन जी अपने फ़क्कड़पन और मौजी स्वभाव के कारण जाने जाते हैं। कई पंक्तियाँ उनका परिचय सहज भाव से दे जाती हैं।

बहा चला जाता हूँ अपनी कल्पित गति की धारा में
बड़े-बड़े बह गये इसी में फिर हूँ कौन बिचारा मैं।

इस संकलन के दो पत्र-गीत बड़े ही मार्मिक हैं। पहले पत्र का अन्त इस प्रकार है—

झाँकी कर लेने दो वरना ये लोचन बेचैन,
तड़प-तड़प बन जायेंगे सूरदास के नैन।

दूसरा पत्र इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

सिरनामा लिखवा दो आके, ज़रा हाथ लो थाम
ज़रा बता दो ओ परदेशी अपना मृदु उपनाम।

शृंगार और प्रेम के ये गीत अपनी मधुरता और मार्मिकता में पूर्ण हैं। ये अपनी अभिव्यक्ति में भी सहज हैं।

नवीन जी विद्रोही कवि हैं। वे जीवन-भर जूझते रहे और विद्रोह को आमन्त्रित करते रहे। कई बार जीवन में असफल भी हुए। नवीन जी का जीवन तो सत्याग्रह-युग का जीवन है। वे गाँधीवाद को अंगीकृत करते हुए भी भैरव-राग गाने में कभी पीछे नहीं रहे। उनके विद्रोह के गीत इसी भूमि के हैं।

नवीन जी ने देश-भक्ति के गीत भी लिखे और क्रान्ति के भी। परतन्त्रता के विरुद्ध संघर्ष का शंख भी उन्होंने फूँका और विप्लव-गायन भी किया। उनकी क्रान्ति का लक्ष्य साम्यवादी क्रान्ति न होकर, अपने स्वत्व और चिन्तन

के साथ स्वतन्त्रता का साक्षात्कार था। 'विप्लव गायन' उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध गीत है। इस गीत में वे महाप्रलय और महानाश का आह्वान करते हैं। वे उथल-पुथल चाहते है—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाये
प्राणों के लाले पड़ जायें,
त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए,
नाश और सत्यानाशों का
धुआँधार जग में छा जाये।

'नभ का वक्षस्थल फट जाये,' 'तारकवृन्द विचल हो जाये', 'माता की छाती का पय कालकूट हो जाये', 'अन्धे मूढ़ विचारों की अचल शिला विचलित हो जाये', 'नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जाये' आदि पंक्तियों में यह स्पष्ट है कि कवि अन्धे और मूढ़ विचारों की नष्ट करना चाहता है।

वह नियम और उपनियम के साथ 'ये बन्धन' कह कर स्पष्ट कर देना चाहता है कि ये बन्धन ब्रिटिश राज के हैं। यह रचना अपने समय की पहचान है। इस प्रकार की ओज और शौर्य से परिपूरित रचनाएँ हिन्दी-जगत में विरल रही हैं। कुंकुम की एक रचना 'पराजय-गीत' में भी समय की स्थितियों को उजागर किया गया है। उस समय की विशृंखलित राजनीतिक स्थिति और क्षुब्ध भाव को प्रस्तुत करनेवाली इस रचना के बारे में कतिपय विवाद भी हैं। कुछ का कथन है कि यह 'चौरी चौरा-काण्ड' के हार की प्रतिध्वनि है। कुछ का कहना है, ऐसा नहीं है। इतना अवश्य है कि बार-बार के सत्याग्रह और बार-बार के जेल से उपजी हुई मानसिकता का यथार्थ चित्रण इस रचना में है। स्थिति इस प्रकार है—

मुझे न छेड़ो इतिहासों के
पन्नों में गति धीर हुआ
आज खड्ग की धार कुण्ठिता
है ख़ाली तूणीर हुआ।
मैं हूँ विजित, जीत का प्यासा,
विजित भूल जाऊँ कैसे ?
यह संघर्षण की घटिका है
बसी हुई हिय में ऐसे—
जैसे, माँ की गोदी में शिशु

का दुलार बस जाता है,
जैसे अँगुलीय में मरकत
का नव नग कस जाता है।
'विजय-विजय' रटते मम मनुआ
वह देखो कल कीर हुआ।

आगामी पंक्तियाँ एक प्रकार का आत्मलोचन हैं—

एक सहस्र वर्ष की माला,
मैं हूँ उलटी फेर रहा
उन गत युग के गुम्फित मन,
को मैं फिर-फिर हेर रहा,
धुम गया जो चक्र उसी की
ओर देखता जाता हूँ
इधर-उधर सब तरफ़ पराजय
की ही मुद्रा पाता हूँ।

और इसी कविता की पंक्तियाँ आत्मग्लानि को इस प्रकार प्रस्तुत करतीं है—

वर्दी फटी, हृदय घायल, मुखपर
कारिख क्या वेश बना ?
आँखें सकुच रहीं, कायरता
के पंकिल से देश सना,
अरे पराजित ओ रणचण्डी
के कपूत हट जा, हट जा
अभी समय है, कह दे माँ मेदिनी
जरा फट जा फट जा।

'विप्लव-गायन' और 'पराजय-गीत' नवीन जी की प्रसिद्धि का आधार प्रदान करने वाली रचनाएँ हैं। अपने युग की धड़कन को नवीन जी ने गहराई से अनुभव किया और उसे अभिव्यक्ति प्रदान की। क्रान्ति की चिनगारियाँ, उद्दीप्त यौवन की पुकार, सर्वनाश और महाप्रलय का गर्जन, कर्म और चिन्तन के सम्मिलित स्वर हैं। जो इस प्रकार की रचनाओं का प्रतिपाद्य हैं।

कतिपय महापुरुषों को केन्द्र में रखकर, जो गीत लिखे गये हैं, उनमें गणेशशंकर विद्यार्थी के द्वितीय बार जेल जाने पर लिखा गया गीत मार्मिक और यथार्थ है। जेल जीवन का यथार्थ इन पंक्तियों में स्पष्ट है—

ताला, कुंजी, लालटेन,
जंगला कैदी ये सब हैं ठीक
खींच चुकी है नौकरशाही
अपने सर्वनाश की लीक।
'चक्कर' से रोटी आवेगी
'डब्बू' भर आयेगी दाल
तू शकटार बना है—पापी
नन्दवंश का जीवित काल,
तेरी चक्की के ये गेहूँ,
पिसते हैं पिस जाने दे,
चक्की पिसवाने वालों को
मिट्टी में मिल जाने दो।

'स्वामी दयानन्द' और 'द्विजेन्द्र ठाकुर' पर लिखी गयी रचनाएँ थोड़ी शिथिल हैं। पर 'विद्यार्थी जी' पर रचित कविता महत्त्वपूर्ण है।

कुंकुम के प्रकाशन के पश्चात् सन् 1951 में *अपलक* प्रकाशित हुआ। इस संकलन में सन् 1936 से लेकर सन् 1948 तक की रचनाएँ संकलित हैं। संकलन की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह भूमिका नवीन जी की चिन्तनधारा को रेखांकित करती है। इस भूमिका से स्पष्ट है कि नवीन जी पदार्थवाद और तथाकथित प्रगतिवाद के घोर विरोधी हैं। वह भारतीयता और भारतीय चिन्तन के पक्षधर हैं अथवा वह मानवतावादी और चेतनावादी हैं। इस संकलन के गीतों में कहीं प्रार्थना के स्वर हैं, कहीं प्रेम के और कहीं दर्शन के। उनका प्रेम अधिकतर दर्शनोन्मुख है। वह ऐहिकता को काम्य नहीं मानते हैं। एक-दो गीत उनके स्वतः के स्वभाव पर भी प्रकाश डालते हैं।

नवीन जी के प्रार्थनापरक गीतों में आध्यात्मिकता घुली-मिली है। इन गीतों में कहीं समर्पण-भाव है, कहीं आर्त पुकार है, कहीं अपने दीन-हीन होने का बोध और अकिंचनता का प्रत्यक्षीकरण है, कहीं असंयम से दूर होने का बोध है, कहीं संसार-सागर में अपनी जीर्ण तरी को पार करवाने की याचना है। कहीं निष्काम भक्ति की गूँज है, कहीं संशय है, कहीं आत्म जागरण है, और कहीं आराध्य के लिए सतत् टेर है। कवि द्वैत से अद्वैत की ओर जाना चाहता है। इतना सब होने पर भी ये भक्तिकाल के गीतों से नितान्त भिन्न हैं। यद्यपि, आराधना के स्वर यहाँ भी हैं, पर नवीन जी भक्त नहीं हैं। जीवन में बार-बार जेल जाना और छूटना, सत्याग्रह की बार-बार

विफलता, देश की दुर्दशा, अंग्रेज़ों का दमन आदि कवि को संघर्ष के लिए भी बेचैन करते है और मुक्ति के लिए भी, यही भारतीय कर्म-साधना है। नवीन जी भारतीय अर्थ में कर्मवीर थे, जो भोग में त्याग और त्याग में भोग पर विश्वास करते थे ! 'वरं देहि सायुज़्य यांचा', 'क्या न सुनोगे विनय हमारी' 'प्रियतम तव तम—हर चरणों में' 'अपलक चख चमक भरो', 'बिन्दु, सिन्धु छोड़ चली' आदि रचनाओं में भक्ति, प्रार्थना और दर्शन का समन्वय है। 'वरं देहि' में अव्यभिचारिणी भक्ति की याचना है।

आज अव्यभिचारिणी निज भक्ति का वरदान दो तो,
निज अपार्थिव अति अकायिक स्नेह का स्मर दान दो तो।।

सायुज्य यांचा में तो एक प्रकार से अद्वैत होने की कामना है—

मुझमें घुलो आन तुम हे मृदुल प्राण
मम याचना का करो रंच सम्मान।

अन्त में कवि कहता है—

कई ये शिशिर और हेमन्त बीते,
रहे प्राण अब तक वियोगी पिरीते,
पड़ा रिक्त हिय, हम मरे हैं न जीते,
सुना है मरो हो तुम्हीं पात्र रीते
बैठो हिए, मैं सुनाऊँ तुम्हें गान
मुझमें घुलो आन, तुम हे मुदुल प्राण।

'क्या सुनोगे विनय हमारी' में भी कवि की विकल पुकार असीम से ससीम के एक होने की है और यदि यह सम्भव न हो तो 'मिच जाने दो ये ऑखें' कह कर कवि अपनी अनन्यता का संकेत करता प्रतीत होता है। 'वरं देहि' में भी वह यही कह उठता है, 'कि ख़त्म कर दो खेल यह प्रियतम तव तम हर चरणों' आदि गीतों में भक्ति की अभय मुद्रा स्पष्ट परिलक्षित है।

प्रियतम, तब तम हर चरणों में
जीवन सलिल ढरे, तब भय क्या, शत मरणावरणों में,

संसार का अंधकार, संशय, प्रपंच सभी तुम्हारे चरणों में आ जाने पर दूर होंगे।

हम विचलित भी होकर 'तम हर चरणों' पर विनत है। अन्त में कवि भारतीय दर्शन की ओर उन्मुख हो उठता है। नवीन के इन गीतों में भक्ति के साथ औपनिषदिक दर्शन की गूँज सर्वविदित है। यथा—

जीवन भर की आत्म निवेदन बान आज यदि छूटे
तो चिर मंगल मूल त्याग की रज्जु क्यों न फिर टूटे ?
अरे समुद अर्पण ही अर्पण चिरजीवन का क्रम है
और गृहण में मरण निहित है, प्रतिपल केवल भ्रम है,
'भुंजी था : त्यक्तेन' सुन पड़ा यह सन्देश श्रवणों में।
प्रियतम तव तम हर चरणों में।

'बिन्दु, सिन्धु छोड़ चली' तो दर्शन-निरूपण ही है। बिन्दु जीव का और सिन्धु ब्रह्म का प्रतीक है। यह ससीम की असीम से स्पर्द्धा है। इस यात्रा में इसे समाधान कहीं नहीं मिला। यथा—

क्षण में वह वाष्प बनी, क्षण में वह ओस बिन्दु,
क्षण में धन वारि विपुल, फिर चातक तोष बिन्दु
किन्तु आत्मतुष्टि कहाँ, यदि न प्राप्तगहर सिन्धु ?

और इसीलिए अन्त में

ओ गम्भीर स्नेह सिन्धु, ओरे सुदूर इन्द्रपूर्ण
इस बौरी बिन्दी का हुआ सकल गर्व चूर्ण,
विलग रूप अब असह्य, असहनीय चक्र धूर्ण,
घहर उठो सन्मुख अब, बीत चुकी युगावली
बिन्दु, सिन्धु छोड़ चली।

नवीन जी का अपना जीवन तो एक प्रकार से अनिकेतन और फ़कीर का जीवन है। इस संकलन का एक गीत 'हम हैं मस्त फ़कीर' उनके अन्तस्-बाह्य के यथार्थ का दिग्दर्शन है। 'हम हैं मस्त फकीर' के प्रारम्भ में ही कवि कहता है—

हम से दूर रहो री संतत, हम हैं मस्त फ़कीर,
बाघम्बर से कहो क्यों बाँधे चीनांशुक का चीर।

कवि कहता है कि हमें तो अंजन की पतली रेख का ज्ञान नहीं है। हम अनिकेत हैं। रास्ते का भी अता-पता हमें नहीं है। अन्त के दो पद बहुत ही मार्मिक हैं—

तुम समझो हो कि अब हो चले हम नवीन प्राचीन !
क्यों भूलो हो कि हम अमर हैं !! हम हैं। लौह शरीर !!
सखीरी हम हैं मस्त फ़कीर !
क्या पूछो हो पता हमारा ? हम हैं अगृह, अनाम !
यही पता है कि कहीं भी अपनी नहीं कुटीर।।
सखी री हम हैं मस्त फ़कीर !!

नवीन जी भूलतः प्रेम-गीतों के रचयिता हैं। उनका प्रेम रीतिकालीन नहीं है। वह अकलंक प्रेम-प्रसूत है। यद्यपि अधिकांश गीत विरह-प्रधान हैं, पर उनमें भी मिलन-गन्ध समाई हुई है। विरह का एक कारण यह भी हो सकता है कि नवीन जी के अधिकांश गीत जेल में लिखे गये हैं। इन गीतों में स्मृति बड़े ही प्रबल रूप में कार्य करती है। स्मृति के बल पर ही तो वियोग को सहन किया जाता है।

हम तो इसी तरी के बल प्रिय, यह बिछोह नद तरा करे हैं।
हम तो आठों याम प्राण-धन ध्यान तुम्हारा धरा करे हैं।

इस प्रकार के गीतों में 'मिलन क्षण' की रीझ, खीझ, झिझक, कुंतलचुम्बन, मधुर संलाप, मन्दिर—मधु परिरंभण सभी कुछ मूर्तिमंत हो उठता है। प्रिय के विरह में जीवन दयार्द्र हो उठा है। कवि के हृदय में हाहाकार रात-दिन लहरा उठता है। ऐसे में धैर्य कैसे धारण किया जाये। यथा—

स्मरण गगन में लख तब मुख शशि किमि धीरज रखिए
ठहरे क्यों न उदधि निज हिय में संयम किमि भरिये ?

नवीन जी के प्रेम-गीत हिन्दी में अपने ढंग के अलग गीत हैं। नवीन जी के गीत सर्वस्व समर्पण-भाव पर आधारित है। इन गीतों में सौन्दर्य की अविरल छवियाँ अंकित हैं। यह सृष्टि ही सुन्दर है। फिर प्रियतम का सौन्दर्य तो अभूतपूर्व है। नवीन जी इस अभूतपूर्व सौन्दर्य के गायक हैं। वह सोलहों आने प्रेमी हैं। प्रेम में चिन्तन का समावेश उनका कौशल है। यही कारण है कि प्रेम की मदोन्मत्तता में भी वह आँख नहीं झपकते। सच तो यह है नवीन जी भारतीय संस्कारों में पले हुए कवि हैं। अतः वह राधा-कृष्ण के उदात्त सौन्दर्य और प्रेम के साथ उसमें संग्रथित चिन्तन को कभी भी विस्मृत नहीं करते हैं। इस प्रेम को ही वह विविध भंगिमाओं में सटीक रूपों में अभिव्यक्त करते हैं। इस अभिव्यक्ति में भाव हैं, हाव हैं, अनुभाव हैं और सबसे अधिक वह रस है, जो काव्य की आत्मा है।

रश्मि रेखा नवीन जी के गीतों का तीसरा संकलन है। इसमें उनकी सन् 1930 से 1944 तक की कविताएँ है। नवीन जी ने इस संकलन में अपनी गीत-रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'आज के इस आस्थाशून्य युग में अनदेखे की देह मृत-प्राय हो गई है। जीवन के क्षेत्र को हम प्रत्यक्ष की परिखा से सीमित कर बैठे है। अप्रत्यक्ष की हमारी प्यास बुझ गई है।...मनुष्य धन से तृप्त नहीं होता, धनमात्र से ही, वैभव से, वित्त से ही उसकी तृप्ति नहीं होती, तृप्ति के लिए तो पर पार की पिपासा लगनी चाहिए और उसकी पूर्ति होनी चाहिए। जन-जीवन में यह प्यास लगे ऐसी

मेरी इच्छा है'। इस प्यास को जगाना नवीन जी का उद्देश्य है। साहित्य के मानदण्ड की चर्चा करते हुए वे भूमिका में लिखते हैं—'वही साहित्य सत् है, वही साहित्य कल्याणकारी एवं सुन्दर है, जो मानव को सर्वभूत-हित की ओर प्रवृत्त करता है। वही साहित्य सत् है, जो मानवीय संकुचित वृत्तियों को अतिक्रमित करने तथा मानव-स्व को विस्तृत करने में मानव का सहायक होता है। इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि वे भारतीय काव्यादर्श को ही स्थापित करना चाहते हैं। इसीलिए वे पदार्थवादी सत्य को चिन्तन में साधन ही मानते हैं, बाध्य नहीं और इसी प्रेरणा-भूमि पर उनके गीति-काव्य का रचाव किया गया है।

इस संग्रह के गीतों में भी मानवतावादी, व्यक्तिपरक, प्रार्थनापरक, प्रेमपरक, प्रवृत्ति और सौन्दर्यपरक रचनाएँ संकलित हैं। 'ढरक बहो मेरे दस निर्झर', सजल, नेहधन, 'अस्थिर बने रहो तुम तारे' जैसी रचनाओं में मानवात्तावादी अवधारणाएँ स्पष्ट हैं। जीवन के संकुचित बोध को देखकर उससे मुक्ति पाने की प्यास इन गीतों में विद्यमान है। यथा—

इतनी रस शून्यता दानवी जग जीवन में कैसे आई ?
ज्वालामुखियों की ये लपटें जगमग में किसने भड़काई ?
पढ़ा सृजन का पाठ प्रकृति ने ! अहं भावना तब उठ धाई,
अरे उसी क्षण से कण-कण में मृषा-तृषा यह आन समाई !
फैले अनहंकार भावना, मिटे संकुचित सीमा अन्तर,
इस सूखे अग-जग मरुथल में ढरक बहो मेरे रस निर्झर !

'सजल नेह-धन-भीर रहे' कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

इतनी विस्तृत, इतनी चौड़ी हो इस मानव की छाती
जिसे निरखकर स्वयं सृजन भी कहे लखो मेरी थाती
मानव का अतिक्षुद्र घरौंदा जग का प्रांगण बन जाये,
यों सीमा में निःसीमा का विस्तृत वितान तन जाये।।
रहे न रणसज्जा, न दुर्ग, ही औ' न कहीं प्राचीर रहे,
जग के नील गगन में निशि-दिन सजल नेह-न-भीर रहे।

तमाम अव्यवस्था, निराशा आदि के बाद आस्था और विश्वास के प्रति आश्वस्ति-भाव कवि के गीतों का केन्द्र है। अन्धकार शाश्वत नहीं है। प्रकाश तो आयेगा ही। यथा—

फिर आयेगी ऊषा हँसती फिर होगा विहान चिर सुन्दर
फिर से नव भैरवी छिड़ेगी फिर होगी पंखों की फर-फर।

नवीन जी के प्रार्थनापरक भावों के गीतों में भारतीय अध्यात्म-दर्शन की गूँज

बराबर बनी रहती है। 'साजन ले जोग री' जैसे गीत तो प्रवृत्ति-निवृत्ति की व्यंजना को ही समाहित किए हुए हैं। कवि का कथन है, प्रेम नित्य संन्यास नहीं, तो 'अन्य योग है रोग री', 'तुम इसे पहचानते हो' गीत में रहस्यवाद के तन्तु स्पष्ट हैं। यथा—

आग दी, तुमने सजन, फिर आग की यह चाह भी दी,
अग्निक्रीड़ा प्रेरणा दी अटपटी इक राह भी दी,
फिर दिये ये दास साधन और गहरी आह भी दी,
लो लगी है आग अब तुम व्यर्थ क्यों हठ ठानते हो ?
प्राण अन्तर्यामिनी मम वेदना तुम जानते हो !

'बिथा या हिय की बरनि न जात' ब्रज में लिखा गया भक्ति-गीत है, जिसमें दैन्य और विनय के साथ माया की प्रचण्डता का अहसास कराया गया है। इस गीत की ध्रुव पंक्तियाँ हैं—

बिथा या हिय की बरनि न जात
छिन-छिन गिनत कलप शत बीते
अजुहु न होत प्रभात,
बिथा या हिय बरनि न जात।'

कवि कहता है :—

अति अज्ञेय, अवेध तिमिर धन छाइ रह्यो चहुँ ओर,
उड़त-उड़त मन-पँछी थाक्यों मिल्यो न निशि को छोर,
हिय छायो घन घोर अन्धेरो कँपत प्राण की डोर
कुछ नहि समझ परत अब कितनी और बचि रही रात।

मन की आकांक्षा है, कि 'ऐसे ही खिल उठो हिये में जिमि सर में जल-जात' यह इसलिए है कि 'मैं नवीन है चल्यो पुरातन, शिथिल है चले गात।' इसी तरह 'प्रियतम तव अंगराग' गीत में कवि जीवन और जगत के कई प्रश्न उठाकर उनसे निज़ात पाना चाहते हैं।

प्रेमपरक गीत नवीन की विशेषता है। इस प्रेम में विरह की भाव-योजना अत्यन्त मार्मिक है। नवीन जी विरह के कवि हैं। संयोग के गीतों की मात्रा अल्प ही है। 'हिण्डोला' शीर्षक रचना में प्रियतम को पाने की कातर याचना है। इसमें स्मृति भी है और भविष्य की आशंसा भी। 'सूना झूला' हृदय में छाले उठा गया है। उन्हीं फफोलों की चाह और है :—

भोली सहज लाज मोहकता निज नयनों में धोले
आकर सुहरा दो मेरे हिय के सुकुमार फफोले।

आन कँपा दो इस झूले की रसिक रज्जु की फाँसी
मेरी उत्कण्ठा को सुन्दरि डालो गलबहियाँ-सी।
क्वासि ? क्वासि ? प्यासी आँखों में बरस रही फुहियाँ-सी
आ जाओ मेरे उपवन में सजनि धूप छहियाँ-सी।

प्रेमी के पास, यदि प्रिय आ जाये तो मन के सारे संशय दूर हो जायें 'यदि आ जाओ तो मिट जाये खटका अबका-तबका'। प्रेम में स्मृति का भाग बहुत रहता है। उसे प्रिय के नेत्रों की याद आ जाती है। 'चमके सब अरुण-अरुण—स्मरण अम्बर में। विकल, विमल, सजल, कमल, विलसे मम सर में'। फिर, प्रिय के लिए अन्तस् की टेर उठी यथा :—

उष्णोदक ढार-ढार सूख चले दृग चंचल
पथराए हैं मम दृग पन्थ जोहते पल-पल
यह त्वदीय अनुपस्थित करती मम प्राण विकल
हहराता है अहरह तुम बिन यह सूना हिय।

नवीन जी का हृदय प्रेमी का हृदय है। उनके मन में प्रिय को पाने की बेकली के स्वर इन प्रेम-गीतों में विद्यमान हैं। यह प्रेम उदात्त प्रेम है। अनुराग के क्षणों को बार-बार जीवन्त करते हुए, प्रिय के सौन्दर्य के अनेकानेक चित्र खींचते हुए भी इन गीतों के उदात्त भाव में अन्तर नहीं पड़ता। यह नहीं कि यह प्रेम-निवेदन अशरीरी के लिए है। है यह शरीरी के लिए ही, किन्तु शरीर के लिए यह नहीं है। अनन्यता, एकोन्मुखता और संग-साथ की उक्त चाह के कारण ये मूलतः भारतीय परिवेश का ही अनुगायन करते हैं। प्रिय के वियोग में कोयल की कुहू उस वियोग को और भी धधकाती है। वर्षा का आगमन परिरम्भण की वृत्ति को और भी उद्दीप्त करता है। कोयल की कूक तो हृदय में चिनगारी धर देती है। यथा—

कुऊ-कुऊ के बैन सुनाकर क्यों भर रही निदाघ हिए सखि
मैं तो हूँ वैश्वानरपायी मैं बैठा हूँ आग पिए सखि
हरित कुंज में छिपकर तूने ये अंगारे और दिये सखि
आग लगा, अब बहा रही तू झोंके लू के कोयल या सखि
तू मत कूके कोयलिया सखि।

वर्षा में रोमांचित होना, पुलकायमान होना, सब कुछ मधुर है, पर कवि की स्मृति ऐसे में कौंधने लगती है।

उस दिन हम तुम दोनों बैठे देख रहे थे बादल के दल,
उस दिन सिहर रहे थे पल-पल प्रिय हम दोनों के अन्तस्तल,
आज नहीं मेघा आये हैं भर लाए हैं मगन-लगन-जल

देखो तो प्रिय छलक उठे हैं, मेरे लोचन किसलय दोनों
कौन बात ऐसी है मेरी, जो तुमसे हो छिपी सलोने ?

निष्कर्ष रूप यह है—

इक वन्दी के लिए कहो तो, क्या बरसात गई या आई ?
मेरी क्या आर्द्रा-चित्रा यह प्रिय ? मेरी क्या शरद-जुन्हाई ?
क्या हेमन्त-शिशिर ऋतु मेरी ? मेरी कौन बंसत निकाई ?
खोकर सब ऋतु-ज्ञान चला हूँ मैं तो आज स्वयं को खोने !
हैं खाली-खाली रस भीने मेरे हिय के कोने-कोने।।

यथार्थ में किये गये प्रिय के रस-कर्म दूर जाने पर कंटक बन गये हैं। 'ग्रीव में वह तव मृदु भुजमाल, स्मरण कंटक बन आई बाल,' और

हम समझे थे कि हैं सदा के हम कंटकित बबूल
पर तुमने हँस कहा, सजन तुम—तुम हो हरित रसाल,
आज वे स्मरण बने हैं काल।

फागुन के महीनों में सावन-जैसे बादलों की प्रतीति कवि को तब-तब होती है, जब-जब असमय बादल घिरकर मन को उत्कंठित कर देते हैं। कवि तब चिल्ला उठता है--'क्यों न आग लग जायें अब इन निरगुन फागुन के धन मन में' नवीन जी के प्रेम-गीत छायावाद-युग के गीतों से भिन्न हैं। नवीन जी के गीतों में नितान्त कल्पना नहीं है, यथार्थ के साथ कल्पना भी है और फिर हृदय में उठने वाले भावों का प्रत्यक्षीकरण है। ये महज गीले गीत नहीं है, वरन कर्म-पथ के स्वर्णचिह्न हैं। यह बैठे-ठाले का रोना नहीं है, जीवन के संघर्ष की चेतनासम्पन्न कथा भी है और व्यथा भी। नवीन के वहुत से गीत ऐसे हैं, जिनसे उनके स्वभाव का और उनके निर्मल अंतःकरण का परिचय मिलता है। मनमौजी जीवन, घुमक्कड़पन, संघर्षशीलता, अक्खड़पन, एक कभी न ख़त्म होने वाली मस्ती और एक अहं उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ हैं। 'आई मौज फकीर की दिया झोंपड़ा फूक', 'हम अनिकेतन', 'मेरा मन जोगी', 'हिय में सदा चाँदनी छाई' इसी प्रकार के गीत हैं। जोगी गीत एक तरह से प्रेम-गीत है, पर उनके स्वभाव की अभिव्यक्ति उसमें प्रभावशाली ढंग से हुई है।

हम हैं अलमस्ताने जोगी हम क्यों माँगे भीख
ओ लजवन्ती ले लो आये देने हम हिय दान

'हम अनिकेतन' नवीन जी का प्रसिद्ध गीत है। 'हम तो रमते राम हमारा क्या घर क्या दर कैसा वतन' के साथ ही कवि का यह अनुभव भी है कि 'हमने देखा सदन बने हैं, लोगों का अपनापन लेकर' एक फ़कीराना ठाट

है, जो इस रचना का मूल है।

ठहरे अगर किसी के दर पर,
कुछ शरमा कर कुछ सकुचाकर,
तो दरबान कह उठा बाबा
आगे जा देखो कोई घर
हम दाता बन कर विचरे
पर हमें भिक्षु समझे जग के जन।

कवि ऐसी मदिरा चाहता है कि जो उसे सदा के लिए गर्क कर दे—

हो जाने दो गर्क नशे में,
मत आने दो फ़र्क़ नशे में,
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के,
फट जाने दो वर्क नशे में
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे
एक बार तो मतवाला।

'रुन-झुन' कविता का बाल-सौन्दर्य अभूतपूर्व है—

मेरे लालन की पैंजनियाँ झनक रही मेरे आँगनियाँ
औचक आकर धीरे-धीरे सुन ले तू मेरी साजनियाँ

ना जानूँ कैसे पाया है। यह धन, अरी पड़ोसिन सुन।

'माघ-मेघ', 'आई यह करुणा सुकुमारी' प्रकृति के सजीव स्वतन्त्र और मार्मिक विम्ब प्रस्तुत करने वाली रचनाएँ हैं। नवीन जी के संयोग-वियोग गीतों में भी प्रकृति का आलम्बन-रूप अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित है।

क्वासि नवीन जी का चौथा काव्य-संकलन है, जो सन् 1958 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में सन् 1930 से लेकर सन् 1949 तक की रचनाएँ संग्रहीत हैं। नवीन जी इस संकलन में भी भारतीय चेतना के पक्षधर तथा पदार्थवादी चेतना के विरोधी हैं। *क्वासि* की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि, 'हमें दुःख है कि ऋषि कार्ल मार्क्स और प्रकाण्ड विद्वान शिरोमणि फ्रेडरिक ऐंगल्स ने इस प्रकार की जड़तापूर्ण स्थापना को स्वीकृत करके अपने दर्शन-तत्त्व को गतिशून्य एवं प्रतिक्रियावादी बना दिया है, इस प्रकार उन्होने मानव-प्रगति को रोक दिया है।' इस संकलन की पचपन कविताओं में भी दार्शनिक, प्रेमपरक, प्रार्थनापरक तथा आत्मपरक गीत हैं। उनकी कविता का दर्शन मानवतावादी है। 'खोलो बन्द द्वार' की प्रार्थना अपने लिए भी है और सबके लिए भी है। नवीन जी को मानव-मुक्ति काम्य है। वे लिखते हैं—

आज तुम्हें मानव को कुछ उन्नत करना है।
उसका यह अहंकार तुम्हें विनत करना है।
उसका अज्ञान मोह आज तुम्हें हरना है।
अन्यथा न होगा यह मानव सच्चिदाकार।
खोलो ये बन्द द्वार।

कवि देखता है कि आज अनिश्चितताएँ सब ओर छाई हैं, भावी की चिन्ता सम्मुख सब आई है। ऐसे में बन्द द्वार खुलने पर ही मुक्ति है। वह बस ऊर्ध्वगामी मनुज जीवन चाहता है। 'ध्यान बस इतना रहे, हो ऊर्ध्वगामी मनुज जीवन'। उनके प्रार्थनापरक गीतों में दर्शन भी है और रहस्य भी, किन्तु दुरूहता कहीं नहीं है। वे साफ़ गा रहे हैं और उसकी कीमत भी अदा करते रहे। 'कब मिलेंगे ध्रुव चरण ये' कविता उनके भक्त मन की साक्षी है। वे दुविधाओं और भौतिक कष्टों से मुक्ति चाहते हैं। जीव की स्थिति इस प्रकार है।

दीप लघु मै तव अलख कर से समय नद में प्रवाहित
नित्यप्रति प्रतिकूलता के प्रबल झोंकों से प्रताड़ित
टिमटिमाता बह रहा हूँ मैं जनम का ही निराश्रित।

फिर भी जीव उसी की खोज में निरन्तर है। वह याचना करता है—

कँप रही है ज्योति अब तो तुम इसे कर दो अनिंगित
तव निवास स्थान में अब लौ लगे इसकी अशंकित
सजन ज्योतिर्मय करो निज पुंज में इसको सुसंचित।

उसमें एक आस्था है, निराशा के बीच एक आशा है। अतः वह कह उठता है। 'ढूँढ़ लूँगा साँझ के पहिले अवश अपना कन्हाई' कवि प्रकाश की याचना भी करता है। परन्तु भव्यता के साथ देखिए :—

मन मगन होगा सजन उस छिन कि जब नव दीप बनकर
मैं लुटाऊँगा जगत को तब रुचिर आलोक मन हर
ज्योति का सन्देश लेकर मैं फिरूँगा नित्य घर-घर।

'मृत्तिका के पात्र में अब तुम भरो निज रूप ज्वालो' शीर्षक रचना में पंछी के प्रतीक के माध्यम से भी कवि जीव की ब्रह्म के लिए चेतना का रूप ही अभिव्यक्त करता है। इसका उड़ना सतत् है। पथ अन्तहीन है। पथ अनजाना है। पर एक अनवरत उड़ान है। वह तो उड़ेगा ही, इसी में जीव की सार्थकता है। उनके चरणों तक पहुँचने की अमिट लालसा है। यद्यपि जीवन-नद अपार है। भँवर हैं। लम्बा पाट है। पर वह तो उड़ेगा, भले ही शरीर रूपी कच्चा घट नष्ट हो जाये—

उड़ना है, उड़ना है। **पीतम दिशि मुड़ना है।**

योग नहीं केवल हो पिय पद में प्रणत भाल

वह मरण-तरण भीति से मुक्ति चाहता है।

भेज अग्नि पुंज करो पक्का रस भाजन तुम
छूट जाये जिससे यह मरण-तरण भीतिरार।

कहीं-कहीं कबरी की याद बरबस आ जाती है। यथा–

चल उतार अंग बस्तर आली तू क्षण भर में होगी पियमय,
अब कैसा दुराव साजन से पूर्व हुआ तेरा क्रय विक्रय है।

है न वही, घूँघट के पट खोल री तोहे पिया मिलेंगे। 'हम तो ओस बिन्दुसम ढरके' में ओस ही प्रतीक है। परमब्रह्म से आत्म का विलगाव और माया में आत्मा का कष्ट पाना उस ओस-बूँद के समान है, जो विराट से विलग होकर धूप-ताप झेलती है। 'प्रिय मम मन आज शांत गान निरति मम मन लगे बज उठा आनन्दलय' इसी प्रकार का गीत है, जो कवि के दर्शन-पक्ष को उजागर करता है।

श्रृंगार के गीत इस संकलन में कवि के परिपक्व होने का भान कराते हैं। एक मान का चित्र देखिए। ऋतु की मादकता और नायिका को मनाना, दोनों इसमें है।

आज उत्फुल्लित निशा है।
बिहसन्ती है प्रति दिशा है।
यह घहरती सुरधुनी भी
इस शरद में अति कृशा है।

तथा

देवसरि में आज तिरने, आ गई हैं चन्द्र किरनें
नील अम्बर में लगे हैं, शुभ्र बादल पुंज घिरने।
प्रवृत्ति तुम हो क्यों विरत संन्यासिनी अब
मान छोड़ो मानिनी अब।

मानवती फिर भी मानती नहीं, अतः जीवन की क्षणभंगुरता का निर्देश है,

बात जीवन की न जानी
लुप्त होंगे किस ठिकाने
किन्तु फिर भी बन रहे हैं।
आज अपने ही बिगाने।

नवीन जी ने लोक गीतों से और लोकभाषा से अपनी भाषा को समृद्ध किया है। मानू हूँ, जानू हूँ, जैसे प्रयोग लोकभाषा के हैं। उनकी 'डोले वालो' एक

प्रसिद्ध कजरी है। 'प्रिय मिन की बेचैनी, इसमें चरम सीमा पर है—

डोला लिये चलो तुम झटपट छोड़े अटपट चाल रे,
सजन भवन पहुँचा दो हमको मन का हाल विहाल रे।

बरखा की ऋतु है। प्रायः बेटियाँ घर आती हैं। पर यह बरखा में ससुराल इसलिए जा रही हैं कि,

उनके बिन बरसाती रातें कैसे कटे अचूक रे,
पिय की बाँह उसी से न हो तो मिटे न मन की हूक रे।

वह तो इन्दर राजा से कहकर आई है कि रात में मेह बरसाना, पिय के पास दिन भर में ही पहुँचना है। यथा—

आज साँझ के पहिले ही तुम पहुँचा दो पिय गेह रे,
हम कह आई हैं इन्दर से रात पड़ेगा मेह रे।

और फिर अन्ततः अद्वैत है—

हृदय-हृदय से प्राण-प्राण से आज मिले भरपूर रे,
पिय मय तिय-तिय मय पिय हो जब, तब हो सम्भ्रम दूर रे।

नवीन जी आत्मपरक गीतों में जिस भाव-बोध की सर्जना करते हैं, वह हिन्दी गीत-क्षेत्र में विरल है। *क्वासि* में भी इस प्रकार के कुछ गीत हैं। इस संकलन में मस्तीपन और अल्हड़पन का कोई गीत नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका चिन्तक उनकी मस्ती पर हावी हो रहा है और एक वेदना की प्रतीति शेष रह गई है।

आज सूखी पत्तियों-सा जल उठा है शुष्क जीवन
और झुलसा जा रहा है फूस-सा सम्पूर्ण जीवन
झर रहे निःश्वास में चिनगारियों के प्रज्वलित कण।

अभी तक एक जीवन एक तान, एक स्वर, एक राग, एक रस में बीता, पर इसमें चूक होने पर ताने ही मिलते रहे हैं—

एक तान, एक स्वर, एक नाद, एक राग, एक रस
इसी तरह अब तक का जीवन, तुमने बिता दिया है बरबस
किन्तु हुआ स्वरभंग सदा ही, ताने दिये जगत ने हँस-हँस
अब मत स्वर साधो बैरागी, अब तुम करो मौन आराधन।

नवीन जी ने स्वयं ही लिखा है 'हम विषपायी जनम के सहै अबोल-कुबोल। नैकु न मानत अनख हम जानत आपन मोल।' अब कवि मौन आराधन पर स्थिर हुआ है। इसके बाद वह *बिनोबा स्तवन* की रचना करता है। यह बिनोबा के प्रति कवि की श्रद्धाञ्जलि है। यह एक तरह की भक्ति-रचना यह है। इसमें जितनी भी कविताएँ हैं, वे 1 मई 1953 से लेकर 9 जून 1953 तक

रची गई हैं। एक माह में कवि ने सात कमल और गुलाब के सुन्दर पुष्पों से हार तैयार किया है, जो श्रद्धापूर्वक आराध्य के चरणों में समर्पित कर दिया गया है। प्रथम रचना है 'अहोमन्त्र सृष्टा हे ऋषिवर' इसमें कवि की परिकल्पना है कि वे वामन भगवान के प्रतिरूप हैं। कवि उन्हें मानवी क्रान्ति की झंझा कहता है। 'हे मानवी क्रान्ति की झंझा, हे मानव के कल्याण'। नवीन जी विनोबा को ऋषि ही नहीं पुरुषोत्तम रूप भी मानते हैं। वे उन्हें अवतारी पुरुष भी मानते हैं। भारतीय चिन्तन की विभिन्न सरिणयों का उल्लेख *बिनोबा स्तवन* की रचनाओं में है। इसके साथ ही आज की युग की विसंगतियों का रूप भी इन कविताओं में वर्णित है। मेरे और मेरे की खींचातानी, विध्वंसात्मक प्रवृत्ति, घृणा, बैर, व्यभिचार आज के युग के प्रतीक हैं। बिनोबा को कवि आज के युग का त्राता मानता है। बिनोबा सन्देश दानं समविभाजन 'नर से नारायण', 'अभय', 'समगति संचालन', 'तिमिरहर', क्लेश हर के रूप में इन गीतों में विद्यमान हैं। इस संकलन की एक कविता 'उड़ान' में मनुष्य को ऊर्ध्वगामी बनाने का संकल्प है। यथा—

उसको देखो उसके मन में प्राणों में
उसकी आँखों में औ उसकी वाणी में
हैं लगे पंख ही पंख अनेकों गति युक्त
उड़ना साकार हुआ इस बलिदानों में

इस संकलन की 'जग चुकी है वर्तिका' शीर्षक रचना में बिनोबा की साधना की प्रशस्ति है, जबकि 'अस्थिपञ्जर' शीर्षक रचना उनके शरीर और आत्मा का प्रत्यक्षीकरण है। विनोबा का शरीर तो हड्डियों का ढाँचा भर है, पर ये हड्डियाँ धरित्री की चिरन्तन स्वस्ति है। इस अस्थिपञ्जर की कंठ ध्वनि से अस्ति की चेतना विकीर्ण है, जिससे नास्ति लज्जित हो गई है। उनका प्रत्यक्षीकरण इस प्रकार है।

एकनिष्ठ, प्रतिष्ठ, अविचल, एकरस, इकध्यान
अनुच्छिष्टा, एकइष्टा, साधना, इकतान,
एक भाव विभूति जिसकी पूर्ण जनकल्याण
राग जिसके हो गये सकल अन्तर्धान।
राम जिसके प्राण को क्षण-क्षण वरण करते।

आज का युग शंकाओं का युग है। अब लोग सन्तों की वाणी पर विश्वास नहीं करते हैं। आज का संशयग्रस्त मानव कहता है कि पाञ्चजन्य का घोष और बंसी के स्वर मन्द पड़ गये, राम-कृष्ण-बुद्ध-ईसा-शंकराचार्य गाँधी-विनोबा सभी को सुना, पर इसगे क्या हुआ ? उसे आज हर बात पर

गहरा अविश्वास है। इस प्रकार के अविश्वास का निवारण करने के लिए नवीन जी 'महाप्राण स्वन' कविता में लिखते हैं—

स्वर है अमर कह रही हम से यों यह प्रकृत्ति पुरानी
मत सोचो कि व्यर्थ होती है ऋषियों की वर वाणी
मानव की सत प्रगति दायिनी है यह श्रुति कल्याणी
वाणी अजर अमर ऋषियों की अपराजिता कहानी
अक्षरता झरती सन्तों के क्षर शोषित कण-कण से
प्राण सिद्ध के स्वर आरोहन और स्वर अवरोहण से।

'ईशावस्योपनिषद् बोला' कविता जीवन्त और प्रभावशाली है। आधुनिक युग के कई प्रश्नों को इस रचना में सार्थक ढंग से उठाया गया है। आज के अँधेरे के विरुद्ध यह कविता भारतीय चिन्तन की धारा के सूत्रों को प्रस्तुत करती है। इस रचना में आधुनिक मानवीय स्थिति इस प्रकार है—

हम मानव भौतिक भाव ग्रस्त
हम अहंकार मय अपरिष्कृत
हम सतत् तमोमय हम पंकिल
हम शीघ्र श्रांत हम अनृतावृत
हम शक्तिहीन, उत्साहशून्य
हम उत्तेजित निशिदिन क्षण-क्षण
हम मनोविकारों का उफान
हम राग समूहों की सन्-सन्।

आज का मनुष्य सभी ओर से घिर गया है, दिशाहीन है। ऐसे में विनोबा नरनारायण रूप हैं, ऋषि हैं। वह सन्देश देता है कि इस मही को वही ले सकता है, जो इस जगड्वाल से भी विशाल है। ये सूर्य, चन्द्र, अम्बर, उनचास-पवन, सभी मनुष्य के हैं, परन्तु पहिले तुम 'स्वामी तो बनो सु—महेष्वास'। आज का मनुष्य ज्ञान और विज्ञान-बोध से सम्पृक्त है, किन्तु वह स्वयं ही काल के मुँह में जा रहा है। ऐसे में यह कविता विनोबा के माध्यम से कहती है—

तुम बड़े खिलाड़ी हो पर ये,
झुनझुने तुम्हारे काल अरे
ये चक्र खिलौने नहीं सुनो
ये पिण्ड रूप हैं ब्याल अरे।

ऐसी स्थिति में आत्मा को पहचानना ही होगा और इन्द्रियों की जकड़न को तोड़ना ही होगा। यथा—

करनी ही होगी उस विभु से,
तुमको निज प्रेम सगाई अब
तुमको करनी ही होगी,
निज जीवन चेतना पराई अब
अपने तारों को खिंचने दो,
मिलने दो साम्य योग स्वर में
झंकृति वह होगी कर देगी,
जो अहं निमज्जित क्षण भर में।

विनोबा स्तवन की अन्तिम कविता 'इस धरती पर लाना है' शीर्षक से लिखी गई है। कवि की चाह है कि यदि कहीं स्वर्ग है तो उसे इस धरती पर लाना है। यदि वह काल्पनिक है तो उस कल्पना को पृथ्वी पर साकार करना है और वैसे तो—

और स्वर्ग तो भोग लोक है,
तदुपरान्त वह रोग शोक है,
हमें भूमि को योग-लोक का
नव अपवर्ग बनाना है।

कवि की चाह यही है कि हम अपने स्वामी आप बनें। ऊर्ध्वगामी सत्चित् अनुगामी बनें और वसुधा को सुधा से सिञ्चित कर दें। यह तभी सम्भव है, जब—

सिहर उठें हम एक बार बस
तज दें निम्न वृत्तियों का रस
फेंकें कंचुकिवत यह वल्कल
जो कि अतीत पुराना है।
तब हम देखेंगे कि हमें कुछ
नहीं यहाँ पर लाना है।

नवीन जी के *विनोबा स्तवन* में कविता का अंश कम है, पर चिन्तन का अंश अधिक है। वस्तुत चिन्तन और काव्य परस्पराश्रित हैं। हर चिन्तक कहीं न कहीं कवि होता है और हर कवि कहीं न कहीं चिन्तक। नवीन जी कवि भी हैं और चिन्तक भी। *विनोबा स्तवन* उनके चिन्तक रूप का प्रखर प्रकाशन है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जीवन के सहज गायक हैं। वे अपने जीवन में राष्ट्र के प्रति समर्पित थे। उन पर गणेशशंकर विद्यार्थी का प्रभाव सर्वाधिक था। वे उनके गुरु आत्मीय सखा और तात सभी कुछ थे। नवीन जी के

पास जीवन के विविध अनुभवों का विराट कोष था। उनके हृदय में प्रेम का समुद्र लहराता था। वे जीवन भर जूझते रहे। वे पथ की कठिनाइयों के केवल दर्शक नहीं थे। भोक्ता थे। जीवन की सतत् संघर्षशीलता ने उन्हें मस्तमौला और फक्कड़ बना दिया था। वे राग और विराग दोनों में सोलहों आने सराबोर थे।

उनका सम्पूर्ण साहित्य युग और जीवन का दर्शन है। इस दर्शन के विविध स्वरूप ही इनकी गीति-कविताओं का विधागत रूप हैं। इन गीतों में वे प्रेमी, चिन्तक, आशा-निराशा में फँसे हुए मनुष्य और सबसे ऊपर चेतनासम्पन्न आस्थावान गायक हैं। उनकी भाषा गम्भीर भी है और प्रसन्न भी, सरल भी है और जटिल भी। पर वह सहज है, कभी भी अनबूझ पहेली नहीं है। वे मानव-जीवन के उद्‌गाता हैं और उनका सम्पूर्ण सरोकार मनुष्य ही है।

4

पत्रकारिता

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' एक प्रखर पत्रकार थे। 'प्रभा' और 'प्रताप' के सम्पादक के रूप में उनके द्वारा किया गया कार्य देश के लिए, समाज के लिए और भारतीय स्वतन्त्रता के लिए अतिशय महत्त्वपूर्ण है।

'प्रभा' का प्रकाशन पहले खण्डवा से, होता था। सन् 1920 से उसका प्रकाशन कानपुर से आरम्भ हुआ। 'प्रभा' मासिक पत्र था। उस समय के मासिक पत्र अपने आप में युग की सम्पूर्ण चेतना के संवाहक थे। एक ओर उनमें साहित्यिक चेतना का स्वरूप उद्भासित होता था तो दूसरी ओर सामाजिक-राजनीतिक चेतना का। खण्डवा में माखनलाल चतुर्वेदी, 'प्रभा' के सम्पादक थे। उस समय माखनलाल चतुर्वेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी और नवीन जी अपने कर्म और लेखन के द्वारा सम्पूर्ण देश को संघर्ष की प्रेरणा प्रदान कर रहे थे। सन् 1923 से नवीन जी ने 'प्रभा' का सम्पादन-कार्य शुरू किया। 'प्रभा' क्रान्ति का संवाहक था। वस्तुतः 'प्रभा' मासिक पत्र गाँधी-युग के पूर्वार्ध का आईना था। तद्युगीन राष्ट्रीय संग्राम की छोटी-बड़ी घटनाओं पर बड़े महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय नवीन जी ने प्रभा में लिखे।

सन् 21 के बाद का कालखण्ड भारतीय मानस के लिए संघर्ष और उत्तेजना का कालखण्ड था। 'प्रभा' ने इस समय साहित्य और धर्म की दिशा को स्वस्थ, किन्तु उग्र रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया।

'प्रभा' में कविता, कहानी, लेख तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं आदि पर प्रासंगिक टिप्पणियाँ भी प्रकाशित होती थीं। नवीन जी की सम्पादकीय टिप्पणियों के शीर्षकों से आप उनकी व्यापकता का अनुमान लगा सकते हैं। कुछ टिप्पणियों के शीर्षक इस प्रकार हैं—'कानपुर कॉटन मिल में नरहत्या', 'शंख ध्वनि', 'मध्य एशिया पर यूरोप की आँखें', 'भारत क्या करे', 'अन्यायी

क़ानून का अन्त' आदि। इन शीर्षकों में देश की अस्मिता और समय के द्वन्द्व की चेतना अनुस्यूत है तथा इन टिप्पणियों का आयाम देश से लेकर विश्व की महत्त्वपूर्ण घटनाओं तक फैला हुआ है। इन सम्पादकीय टिप्पणियों का चिन्तन-पक्ष प्रखर और विस्तृत है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्राम की छोटी-बड़ी घटनाओं की मीमांसा के लिए नवीन जी की टिप्पणियाँ भारतीय जन-जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन टिप्पणियों के अन्तर्गत—कांग्रेस अधिवेशन, गाँधी जी की रिहाई, मुक्त सावरकर जी, जैती का हत्याकाण्ड, असहयोग की आग, क्रान्ति के बीज, हिन्दू महासभा के प्रस्ताव आदि विषयों पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन किया गया है।

'प्रभा' की सम्पादकीय टिप्पणयाँ केवल भारत देश तक ही सीमित नहीं थीं, अपितु नवीन जी की टिप्पणियों में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और विविध आयामों पर भी सुस्पष्ट चिन्तन किया गया है। इसके अन्तर्गत अपने युग में लेनिन की मृत्यु, केनियां में सत्याग्रह का प्रारम्भ, साउथ अफ्रीका, इम्पीरियल कांफ्रेन्स, मित्र राष्ट्र और जर्मनी, लेनिन के बाद रूस, जापान सन्धि, आदि को दृष्टिपथ में रखा जा सकता है। नवीन जी ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं को समझा-परखा और उनका मूल्यांकन किया। उनमें एक विशेष प्रकार की उदात्त प्रगतिशीलता विद्यमान थी, जो उनके द्वारा लिखी हुई टिप्पणियों अथवा सम्पादकीयों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

'प्रभा' में कविताएँ और कहानियाँ भी प्रकाशित होती थीं। नवीन जी द्वारा कविता एवं कहानियों का चयन निष्पक्ष होता था। इस काल में नवीन जी की साहित्यिक सेवा भी उल्लेखनीय है। उन्होंने नये-पुराने सभी लेखकों को उनकी कृति के आधार पर 'प्रभा' में स्थान दिया। प्रभा में छपने वाले कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, भगवतीचरण वर्मा और निराला जी-जैसे उत्कृष्ट रचनाकार थे। इतना ही नहीं गद्य-क्षेत्र में रास बिहारी बोस की आत्मकथा—'विप्लव के अग्निकुण्ड की चिनगारियाँ' के कुछ अंश 'प्रभा' में प्रकाशित हुए थे।

समय-समय पर 'प्रभा' के विशेषांक भी प्रकाशित होते रहे हैं। इन विशेषांकों में 'तिलक अंक', 'झण्डा अंक' और 'बेलगाँव कांग्रेस अंक' प्रमुख हैं। इन अंकों ने देश की जनता को स्वाधीनता-संग्राम की जानकारी प्रदान कर उनके हृदय में आस्था और विश्वास का संचार किया। यह अतिशय महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि नवीन जी का अन्यतम सहयोग 'प्रभा' को मिला और उनके सम्पादन-काल में 'प्रभा' ने जनचेतना और साहित्यिक चेतना को उद्बुद्ध किया और उसे गति प्रदान की।

गणेशशंकर विद्यार्थी से नवीन जी का सम्पर्क-सम्बन्ध सन् 1916 की लखनऊ कांग्रेस में हुआ। उज्जैन से मैट्रिक परीक्षा उतीर्ण करने के बाद नवीन जी 1917 में कानपुर आ गये और गणेशशंकर विद्यार्थी के साथ घुलमिल गये। इसी वर्ष वे 'प्रताप' से जुड़े और प्रताप से उनका सम्बन्ध जीवन भर बना रहा। नवीन जी अपने विद्यार्थी-जीवन से ही 'प्रताप' के नियमित पाठक थे और 'प्रभा' के ग्राहक थे। वास्तविक रूप में गणेशशंकर विद्यार्थी ने ही उन्हें पत्रकारिता के गुर सिखाये थे। गणेशशंकर विद्यार्थी के संग-साथ ने उन्हें इस देश का विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण पत्रकार बना दिया।

'प्रताप' के सम्पादन में नवीन जी ने कीर्तिमान स्थापित किए। उनकी सामयिक टिप्पणियाँ और सम्पादकीय उग्र, बेवाक, चिन्तनपरक और स्पष्टता से परिपूर्ण होते थे। सन् 1923 के दो अंकों में सर्वप्रथम सम्पादक के रूप में नवीन जी का नाम अंकित किया गया। इन वर्षों में नवीन जी-द्वारा लिखित (सम्पादकीय) टिप्पणियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि उनकी दृष्टि व्यापक थी तथा अपने समाज, देश, युग और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सन्दर्भ में उनका चिन्तन प्रखर तथा विचार परिपक्व हो चुके थे। इन टिप्पणियों की विषयवस्तु राजनीति, संस्कृति, व्यक्ति, शासन तथा राष्ट्रभक्ति से सम्वद्ध है। ओज, उग्रता तथा निर्भयता इन सम्पादकीय टिप्पणियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। 'प्रताप' में लिखी गई सम्पादकीय टिप्पणियों के शीर्षक भी नवीन जी की पैनी और जागरूक दृष्टि के प्रमाण हैं। 'नागपुर-सत्याग्रह', 'जापान', 'घी के दिये', 'रामराज्य परिषद् और भारत', 'हिन्दू संगठन का संगठन', 'जरायमपेशा जातियॉं' आदि।

गणेशशंकर विद्यार्थी का निर्देशन नवीन जी के लिए पारस-स्पर्श था। गणेश जी की पत्रकारिता के आदर्श तथा सिद्धान्त और सम्पादकीय लेखन-पद्धति को नवीन जी ने सम्यक् बुद्धि के साथ ग्रहण किया। नवीन जी के आलेखों, टिप्पणियों और सम्पादकीयों की भाषा संस्कृत-निष्ठ हिन्दी थी, किन्तु चिन्तन की गहराई, उग्रता की ऊष्मा तथा प्रवाहमयता के कारण उनकी भाषा सहज और बोधगम्य थी। नवीन जी का स्वभाव कवि का था। वे भावुक कवि थे। उनमें एक मस्ती थी। एक फ़क्कड़पन था। उनमें शान्त और उग्र भाव का अद्भुत समन्वय था। नवीन जी सत्य और न्याय के पक्षधर थे। अंग्रेजों के शासन द्वारा किये गये निरन्तर अत्याचारों से वे स्वयं उत्तेजित और उद्वेलित हो उठते थे। 'प्रताप' का सम्पादन करते हुए उन्होंने देशभक्तों, शहीदों तथा क्रान्तिकारियों के प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट की। काकोरी-षडयंत्र के क्रान्तिकारियों के प्रति जो सम्पादकीय उन्होंने 'प्रताप' में

लिखा था, वह उनकी देशभक्ति, दीवानों की कद्रदानी, भापा की मार्मिकता, शैली का प्रसन्न प्रवाह, अद्‌भुत प्रभावोत्पादकता, चित्रांकन-शक्ति, सूझ-बूझ पूर्ण अभिव्यक्ति आदि की दृष्टि से सम्पादकीय लेखन-पद्धति का उत्कृष्ट उदाहरण है। यथा—

"वे। अरे ओ दुनियाँदार ! तू इन्हें किस नाम से, किस गाली से विभूषित करना चाहता है।

वे मस्त हैं, वे दीवाने हैं, वे इस दुनियाँ के नहीं। वे स्वप्न-लोक की वीथियों में विचरण करते हैं। उनकी दुनियाँ में, शासन की कटुता से, माँ धरित्री का दूध अपेय नहीं बनता। उनके कल्पना-लोक में ऊँच-नीच का, धनी-निर्धन का, हिन्दू-मुसलमान का भेद-वेद नही है। इसी सम्भावना का प्रचार करने के लिए वे जीते हैं। दुनियाँ के पठित मूर्खों की मण्डली उनको गालियाँ देती है। लेकिन यदि सत्य के प्रचारक गालियों की परवाह करते तो शायद दुनियाँ में आज सत्य, न्याय, स्वातन्त्र्य और आदर्श के उपासकों के वंश में कोई नाम लेवा और पानी देवा भी न रह पाता। लोक-रुचि अथवा लोकोक्तियो के अनुसार जो अपना जीवनयापन करते हैं, वे अपने पड़ोसियों की प्रशंसा के पात्र भले ही बन जायें, पर उनका जीवन औरों के लिए नहीं होता। संसार को जिन्होंने ठोकर मार कर आगे बढ़ाया, वे सभी अपने-अपने समय में लाछित हो चुके हैं। दुनियाँ खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने तथा उपयोग करने की वस्तुओं का व्यापार करती है। पर कुछ दीवाने चिल्लाते फिरते हैं—

'सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।' ऐसे कुशल किन्तु औघढ़ व्यापारी भी कभी देखे हैं। अगर, एक बार आप हम उन्हें देख लें तो कृतकृत्य हो जायें।"

एक और सम्पादकीय का उद्धरण देखिए—यह प्रथम उद्धरण से भिन्न है। विषय के अनुरूप भाषा का चयन करने में नवीन जी निपुण थे। यह उद्धरण महात्मा गाँधी के कानपुर आगमन के परिप्रेक्ष्य में है—

"आओ, तीस करोड़ जनगण के अधिनायक, पधारो। इस अभागे प्रान्त को अपने अकम्पित चरण की रज से पवित्र करके, यहाँ की जनता में आत्मविश्वास और स्वावलम्बन का भाव कम्पित करने के लिए आओ। देव ! राम और कृष्ण का क्रीड़ा-क्षेत्र यह प्रान्त आज तुम्हारे स्वागत के लिए उत्सुक है। अपने देवताओं को रिझाने का हमारे पास कोई सामान नहीं है। हम निःसाधन हैं, निर्धन हैं, निस्तेज हैं। तुम्हारे तपःपूत हाथों में हम क्या भेंट धरें ? हम तो इस योग्य भी नहीं हैं कि तुम्हारी चरण-रज को अपने कलुषित

माथे पर रख सकें। यह आत्मग्लानि की अनुचित भावना नही है, जो हमें ऐसा कहने को विवश कर रही है।''

नवीन जी की पत्रकारिता का एक उदाहरण और दे रहा हूँ। यह भिन्न भाषिक सर्जना और रोषपूर्ण गर्जना है। वीर सावरकर ने 'श्रद्धानन्द' दैनिक समाचारपत्र में गाँधी को केन्द्र में रखकर गॉधी के प्रति एक अवमानना पूर्ण शृंखला प्रारम्भ की। गाँधीभक्त नवीन जी ने इस पर उग्र प्रतिक्रिया व्यक्त की तथा 'प्रताप' में 'श्रीमान तड़ातड़ ओझा' के नाम से 'मिर्ची की धूनी और तमाचा' शीर्षक से एक लेख लिखकर छाप दिया। इस लेख का एक अंश इस प्रकार है।

''बम्बई से एक चिथड़ा अख़बार निकलने लगा है। यह चिथड़ा मराठी में भी निकलता है और हिन्दी में भी। इस पत्र का एक नियम है—वह यह कि यह पत्र सदा सर्वदा महात्मा गाँधी को गालियाँ दिया करता है। मैं इस पत्र की बेहूदगियों पर कभी ध्यान नहीं देता। कई बार इसके छिछोरे पन के ऊपर मैंने लिखने का विचार किया। मैंने कभी कुछ नहीं लिखा। अब देखता हूँ कि इस बार फिर इस सड़े-गले चिथड़े ने महात्मा जी पर आक्षेप किए हैं। वे नितान्त असभ्यतापूर्ण, ग़लत-फ़हमी फैलाने वाले और अकारण हैं। इस पत्र के सर पर गाँधी-विद्वेष का भूत सवार है। भूत उतारने की दवा है, 'मिर्चे की धूनी और करारा तमाचा'। सो भाई आज मैं वही प्रयोग कर रहा हूँ। भूतव्याधि ग्रस्त यह पत्र कल का लौंडा है। इसलिए जरा मैं सोच समझकर ही तमाचे जड़ूँगा। मुझे यह भी तो ख़याल है न, कि कहीं लड़के के गाल बहुत अधिक सूज न जायें।''

नवीन जी अपने विचारों को स्पष्ट रूप से 'प्रताप' में लिखते थे। वे गॉधीभक्त थे, पर अन्धभक्त नहीं थे। 'हिन्दी' के प्रश्न पर वे गाँधी-नेहरू की हिन्दुस्तानी के ख़िलाफ़ थे और उन्होंने 'प्रताप' के माध्यम से निर्भय होकर अपनी मान्यताओं को अभिव्यक्त किया। उनकी पत्रकारिता युग-बोध से परिप्लावित थी, बहुआयामी थी, सार्वदेशिक थी और किन्हीं अंशों में निर्मम भी थी।

'प्रताप' मे एक लेख की तीव्रता के कारण उन्हें छः मास का कारावास भुगतना पड़ा था। नवीन जी अपने युग के महानतम पत्रकारों में से एक थे। वे विशुद्ध कांग्रेसी थे। लेकिन कांग्रेस का विरोध करने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं था, यदि वह राष्ट्रहित में हो। वे निर्भय और निडर थे। नवीन जी लम्बे-लम्बे सम्पादकीय लिखा करते थे और एक ही बैठक में लिख लेते थे। 'प्रताप' में लिखे गये लेखों ने करोड़ों भारतीयों को आन्दोलित किया

था। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्राम को उद्दीप्त करने में उनकी पत्रकारिता का योग महत्त्वपूर्ण था। उनके लेखन की विशेषता भावप्रवणता और तीक्ष्णता में थी। उनकी लेखनी किसानों के लिए, श्रमिकों के लिए, सर्वहारा वर्ग के लिए और समाज के लिए समर्पित थी। उनकी पत्रकारिता के सन्दर्भ में श्री रामवरण सिंह 'सारथी' ने लिखा था कि—'नवीन जी की पत्रकार-कला में समष्टि के जीवन का माधुर्य है, ओज है, वेगवती सरिता है, विचारों की निर्झरिणी है। नवीन का हृदय कवि है, इस कारण उनके हृदय में भावुकता निरन्तर क्रीड़ा करती है और उनका मस्तिष्क क्रान्तिवादी विचारक है, इस कारण नवीन की पत्रकार-कला में विप्लव का शंखनाद है और कवि का मधुर संगीत भी है।' (*साहित्य सन्देश,* जून 1952, पृ. 511)

आचार्य शिवपूजन सहाय ने नवीन जी की पत्रकारिता की प्रशंसा करते हुए लिखा था—'उनके सम्पादकीय स्तम्भों में हृदय की ज्वाला, मस्तिष्क का तेज, आत्मा की हुंकार-ध्वनि, भाषा का चमत्कार और रणचण्डी की ललकार भरी होती है।' (*शिवपूजन रचनावली,* तृतीय खण्ड, पृ. 333)

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की पत्रकारिता उनके जीवन का बहुमूल्य भाग थी। उस समय अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ी शासन के ख़िलाफ़ कुछ भी लिखना ख़तरे से खाली नहीं था। नवीन जी ने यह खतरा उठाया और 'प्रताप' में उनके लेखन के कारण उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा। उस समय की पत्रकारिता और आज की पत्रकारिता में मूलभूत अन्तर है। आधुनिक युग में हर वस्तु व्यावसायिकता के जाल में फँस गई है। अब अख़बारों में पार्टी बन्दी है। व्यावसायिकता ही एक मात्र लक्ष्य हो जाने के कारण नग्नता, यौनवाद, शेयर मार्केट, फ़िल्मी दुनियाँ, हिंसा, बलात्कार आदि ही अख़बार की ख़बरें हैं। प्रखर और बुलन्द पत्रकारिता दम तोड़ चुकी है। आधुनिक पत्रकारिता युवा पीढ़ी को दिशाहीन बना रही है। ऐसे समय में गणेशशंकर विद्यार्थी या बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे लोग केवल स्मृतिशेष होते जा रहे हैं। आवश्यकता निष्पक्ष, ज्ञान-विज्ञान सम्मत पत्रकारिता की है, जो ख़तरे उठाकर नई राहें बना सके।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का 'प्रताप' का सम्पादन जीवट से भरा हुआ, देश-प्रेम से पूरित और स्वाभिमान से सम्पृक्त था। वे त्याग और सेवा के अन्यतम उदाहरण थे। कितनी ही विपत्तियों को झेलते हुए, जान हथेली पर रखे हुए, बार-बार जेल जाते हुए भी नवीन जी ने पत्रकारिता की अभूतपूर्व मिसाल क़ायम की थी। 'प्रताप' पर मुक़दमे चलते रहे, बन्द होता रहा, फ़ाइन होते रहे, पर 'प्रताप' की जीवन-शक्ति में कमी नहीं आई। 'प्रताप' साप्ताहिक

और दैनिक दोनों निकलता था। 'प्रताप' साम्प्रदायिकता के विरुद्ध हमेशा अपनी आवाज़ उठाता रहा। सन् 1939 में नवीन जी ने 'मुस्लिम लीग' की गुण्ड़ागर्दी के ख़िलाफ़ सम्पादकीय लिखा, जिसने सारे वातावरण में एक विशेष हलचल पैदा कर दी। इस सम्पादकीय का शीर्षक था—'गुण्डागिरी रोकने में यह नपुंसकता कैसी'। सम्पादकीय का कुछ अंश द्रष्टव्य है :—

"हम ऊँट हैं, जिसकी पीठ पर बेतहाशा वज़नी लाद दी गई है और हमने आज तक किसी प्रकार की चूँ-चूँ नहीं की। हम बलबलाए नहीं। नकेल नहीं तुड़ाई। दुम नहीं हिलाई। चुपचाप रहे। लेकिन अब ता. 24 अप्रैल के लखनऊ असेम्बली वाले वाकयात ने हमारे ऐसे ऐबदार की भी कमर तोड़ दी है और आज हम चीख़ने और चिल्लाने पर मजबूर हो गये हैं। आख़िर कमज़ोरी और ढिल्लरपने की कोई हद भी तो होती है। शुरू से लेकर आज तक हम इस सूबे में फ़िरके-वाराना फसादात और पुलिस के सिर्फ़ एक तबके की खुल्लम-खुल्ला फिरका-परस्ती और हाल ही के अंग्रेज़ हरकतों को रोकने में या सम्हालने में हमारी कांग्रेस सरकार ने निहायत बुज़दिली और बेबसी से काम लिया है। महीनों की टील-टाल और तूलतबील कार्य-शैली ने गुण्डापन को उभार दिया है। लोग शेर हो गये हैं। अब गुण्डे खुल्लम-खुल्ला कहते हैं कि कोई हमारा क्या कर लेगा। जो मन में आया, किया। एक मर्तबा वे पहले, शायद गुजिश्ता मार्च में, असेम्बली भवन में घुस गये, वहाँ उन्होंने मनमाने नारे लगाए और वे चलते बने। वे मूँछों पर ताव देते हैं कि किसी ने हमारा क्या कर लिया ? ता. 4 को वे फिर असेम्बली में घुस आये। सरकारी काग़ज़ात फाड़े, फ़ाइलों पर हाथ साफ़ किये, असेम्बली-सभा-भवन में प्रधानमन्त्री की लू-लू बोली, मेज़-कुर्सियाँ तोड़ीं और तब हटे, जबकि नवाब इस्माइल ने उनसे चले जाने को कहा। हमारी सरकार बड़ी भली है, बड़ी उदार है, बड़ी दूरन्देश है। बहुत फूँक-फूँक कर कदम उठाती है—क्या कहने हैं। लानत है इस भलेपन और दूरन्देशी पर। क्या वे पचास-साठ या सौ-सवा सौ गुण्डे गिरफ़्तार नहीं किये जा सकते थे ? सुना है कि जिस वक़्त एसेम्बली-भवन में यह उत्पात हो रहा था, उस वक्त आला सरकारी अफ़सर ने कहा कि गुण्डों पर गोली चला देनी चाहिए। लेकिन नहीं। भलमनसाहत का प्रदर्शन किया गया। नतीज़ा यह है कि उत्पाती लोग आज लखनऊ की गलियों और बाज़ारों में सीना उभारे घूम रहे हैं और अपनी दिलेरी का परवान अकड़-अकड़ कर रहे हैं।" (*साप्ताहिक प्रताप,* 30 अप्रैल 1939)

नवीन जी साहसी पत्रकार थे। उनमें किसी भी कुशल सम्पादक के

सभी गुण मौजूद थे। एक सम्पादक को कुशल पाठक भी होना चाहिए। सम्पादक को कान और आँख खुले रखना चाहिए। उसका मिलना-जुलना और परिभ्रमण भी सतत् बना रहना चाहिए। दैनंदिन का संचालन उसका काम होना चाहिए, क्योंकि समाचार-पत्र को नित्य नया जीवन जीना पड़ता है। नवीन जी में ये सभी विशेषताएँ थी। इसके अलावा उनके पास एक कवि का हृदय भी था। उनके पास अपनी भाषा और अपने तेवर थे। उन्होंने धन कमाने के लिए पत्रकारिता कभी नहीं की। उनकी पत्रकारिता का लक्ष्य था कि पराधीनता की शृंखलाएँ टूटें, अन्याय तथा अत्याचार का अँधेरा, दूर हटे, हमारा जीवन सीधा-सादा, किन्तु सांस्कृतिक बने और मातृभूमि की सर्वतोमुखी उन्नति हो। इसलिए ही उनकी पत्रकारिता ने राष्ट्र-जीवन को स्वच्छ तथा गतिशील बनाने का सतत् प्रयत्न किया।

नवीन जी हिन्दी के पक्षधर थे और भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को ही देखना चाहते थे। वे जन-जीवन के चितेरे थे। उन्होंने जो भी किया वह देशहित में किया था। उन्होंने अपने लिए कुछ नहीं किया। वे स्वयं तो 'अनिकेतन' थे। एक फ़कीरी ठाठ था उनका। उन्होंने अपना जीवन सम्पूर्ण स्वाभिमान के साथ व्यतीत किया। पत्रकारिता का एक अनूठा मानदण्ड उन्होंने अपने कृतित्व से प्रदान किया। अपने बारे में कहा गया उनका कथन उनके सन्दर्भ में सटीक कथन है—

हम विषपायी जनम के सहैं अबोल कुबोल
नैंकु न मानत अनख हम जानत अपनो मोल।

5

उपसंहार

पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' प्रारम्भ से अन्त तक राष्ट्र-सेवा और साहित्य रचना में लगे। उन्होंने जीवन को अपनी तरह जिया। उनका साहित्यकार भी समाज का सजग प्रहरी था, पर भीतर से उनका हृदय प्यार से लबालब था। वे पैदा ही ग़रीब किसान के घर हुए थे। उनके प्रारम्भिक जीवन पर विपन्नता और अभाव का साम्राज़्य था। जीवनयापन मुश्किल से ही होता था। माँ दूसरों के घर गेहूँ पीसती और साधन जुटाती। नवीन जी का बाल जीवन और शैशव गाँव में ही बीता, फलतः खेत-खलिहान, टीले, मैदान और अमराइयों तथा विध्यांटवी के मध्य ही व्यतीत हुआ। वे सदैव ग्राम्य जीवन को ही अपने पास पाते रहे। यथा :–

तुम पृथ्वी के सुवन, अरे तुम ओ मृत्तिका प्रसून निरे
तुम खेतों खलिहानों के सुत, तुम धरती के पूत निरे
घास और कड़वी संग शैशव काल बिताने वाले ओ,
तुम हो मक्का, ज्वार, चनों के संग-संग संभूत निरे।

नगर-निवास करते हुए भी उनकी ललक गाँवों के प्रति ही बनी रही–

ओ ग्रामीण आन पहुँचे हो, आज ग्राम की छाया में
फिर भी नागरता का छिलका लिपट रहा है काया में
रंगे स्यार से तुम जँचते हो, इस आडम्बरहीन गृहे
बनो प्रकृत नर, रहो न हठ कर कृत्रिमता की माया में।

शाजापुर नगर में एक ऊँचा टीला है। एक बार कानपुर से नवीन जी शाजापुर आये। तब उनकी उम्र चालीस से ऊपर हो गई थी। शाजापुर में अपने शैशव काल में कितनी ही बार इस टीले पर चढ़े-उतरे थे। नवीन जी का इस बार का अनुभव पहले से भिन्न था–

आज साँझ की गोरज बेला, चिर परिचिता पहाड़ी पै
खूब चढ़े तुम गिरते-पड़ते चोटी निरी उघाड़ी पै
उखड़ी साँस, हृदय-गति धड़की, चरण कँपे, नासा फूली
लो अधेड़पन चढ़ आया है, नित्य नवीन खिलाड़ी पै।

नवीन जी का स्वभाव फक्कड़पन और मस्ती से भरा हुआ था। वे स्वतन्त्रता संग्राम के अप्रतिम योद्धा थे। आज के युग में जब हम छोटे-बड़े तमाम नेताओं को रुपया बटोरते देखते हैं तो मन क्षोभ से भर जाता है। नवीन जी किसी फ़कीर से कम नहीं थे। वे सतत् क्रियाशील रहे। उस समय की पत्रकारिता तो लोहे के चने चबाना था। नवीन जी ने तमाम ख़तरों को झेला था। वे बार-बार जेल गये, किन्तु उन्होंने कभी भी ग़लत बात से समझौता नहीं किया।

नवीन का कवि अनुभव का कवि था। वे अपने लेखन में अपने अनुभवों को अंकित करने में लाजवाब थे। उन्होंने घर नहीं बनाया। पैसा नहीं जोड़ा। वे निर्भय और निडर थे और उनकी क़लम उनके अनुभव से सम्पन्न थी। वे लिखते थे और जमकर लिखते थे। कतिपय पंक्तियाँ देखिए—

हम अनिकेतन, हम अनिकेतन
हम तो रमते राम, हमारा क्या घर, क्या दर कैसा वेतन ?
अगर किसी के द्र पर ठहरें कुछ शरमा कर कुछ सकुचाकर
तो दरबान कह उठा बाबा आगे जा देखो कोई घर
हम दाता बनकर विचरे, पर हमें भिक्षु समझे जग के जन,
हम अनिकेतन, हम अनिकेतन।

नवीन जी में एक विशेष प्रकार की उग्र चेतना थी। वे प्रत्येक प्रकार के अन्याय का समूल विनाश चाहते थे। इसके लिए वे महानाश का आवाहन अपनी रचना में करते हैं। उनके भीतर एक प्रकार का मन्थन सदैव चलता रहा। वे कवि को सम्बोधित करते हुए लिखते हैं—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये
प्राणों के लाले पड़ जायें त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाये।
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाये।
बरसे आग, जलद जल जाये, भस्म सात भूधर हो जायें
पाप पुण्य सद्सद् भावों की धूल उड़ उठे दायें-बायें।

नवीन जी के एक ओर बाह्य वातावरण था, जहाँ निराशा फैल रही थी और दूसरी ओर उनका अन्तस् भी विगलित हो रहा था। अपने अन्तस् को वे

इस प्रकार वर्णित करते है :—

हम संक्रान्ति-काल के वासी बदा नहीं सुख-भोग
हमें क्या पता क्या होता है स्निग्ध-सुखद-संयोग ?
हम बिछोहँ के पले खूब जाने हैं पूर्ण वियोग
घर उजाड़ कर जेल बसाने का है हमको रोग।

नवीन जी का वैशिष्ट्य उनकी अनन्यता में है। वे राष्ट्र के अनन्य उपासक थे, गणेशशंकर विद्यार्थी पर उनकी अनन्य श्रद्धा थी और अपनी प्रियतमा के प्रति भी उनका अनन्य प्रेम था। वे आघात और अवसाद के कवि भी थे। प्रेम और प्यार के कवि भी थे और संघर्ष के कवि भी थे। एक ओर *उर्मिला* खण्डकाव्य, *प्राणार्पण*—श्रद्धांजलि काव्य और दूसरी ओर उनके गीत-प्रगीत जिनमें देशकाव्य है, राष्ट्र-चेतना है, भारतीय दर्शन है और जीवन की गहरी समझ के अनुभव हैं। नवीन जी अनुभव-सम्पन्न और ईमानदार सर्जक थे। जब स्वाधीनता-संग्राम में हताशा और पराजय के बिन्दु प्रतीत होने लगे थे, तब उन्होंने लिखा है :—

आज खड्ग की धार कुंठिता, है ख़ाली तूणीर हुआ,
विजय-पताका झुकी हुई है, लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ,
वर्दी फटी, हृदय घायल, मुख पर कारिख, क्या वेश बना ?
आँखें सकुच रहीं, कायरता के पंकिल में देश सना।
अरे पराजित ओ रणचण्डी के कपूत ! हट जा, हट जा
अभी समय है, कह दे माँ मेदिनी जरा फट जा, फट जा !

नवीन का एक पक्ष प्रीति-प्यार का भी है, किन्तु देशप्रेम बड़ा है। फलतः भीतरी उलझन को वे इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं :—

तुम्हें चाहता हूँ कितना यह कैसे जतलाऊँ बाले,
कैसे दिखलाऊँ कि पड़े हैं मेरे हिय में कितने छाले
किन्तु चाह का दाह-मात्र ही इस जीवन का लक्ष्य नहीं
कर्तव्याकर्तव्य तत्त्व के पड़े हुए हैं हम पाले।

इस प्रकार के वातावरण के भोक्ता होते हुए भी नवीन जी की मस्ती और फ़क्कड़पन बरकरार रहे, यह उन जैसे जीवटवाले कवि का ही पराक्रम था। वे दुर्दमनीय आस्था के कवि थे। घने से घने कोहरे के बीच उनकी आस्था की ज्योति सदैव उद्भासित होती रहती थी। उनका कथन देखिए :—

सौ-सौ बार नित्य कर भी मैंने चिरजीवन पाया,
अति निशीथ चिन्ता-जर्जर भी मैं 'नवीन' ही कहलाया।

नवीन जी की कविता की भाषा सहज़, प्रवाहपूर्ण, अभिव्यंजनायुक्त तथा

भावानुकूल भापा है। वे भाषा में नव प्रयोग करने में कोई संकोच नहीं करते थे। इस सन्दर्भ में डा. शिवमंगलसिंह 'सुमन' लिखते हैं–

'भाषा के साथ कभी-कभी उसने नादिरशाही भी की है। सन्नाटे में और कभी उन्नाटे में वह ऑधी बवण्डर और घनों की चोटों को छाती पर झेलने का आह्वान कर उठता है। स्वतन्त्रता-संग्राम के इस सेनानी की आत्मकथात्मक कविताएँ, हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। उनकी व्याख्या करने के लिए तो रससिद्ध, वाक् विदग्ध आलोचक की आवश्यकता है। ऐसा उन्मुक्त भावाभिव्यंजन अभूतपूर्व साहस और शौर्य की अपेक्षा रखता है–

आज पान देते छलका, नयनों से पानी
देख तुम्हारी यह आतुरता, मेरी मति-गति अकुलानी।
मेरे धीरज की भी कोई सीमा है, सोचो तो ?
देख अश्रु ये, भड़क उठेगी मेरी भावुक नादानी।
मेरा जीवन तो आँसू ही आँसू की है एक लड़ी
पर आँसू को उपल बनाना, है बस यह साधना कड़ी
आज अश्रु की अमल तरलता अश्म रूप बन जाने दो
ओ कलिकाक्षि, न भर-भर लाओ अपनी आँखें घड़ी-घड़ी।

नवीन जी की शुद्ध-बुद्ध भावाकुलता की विशेषता यही है कि वह मनोमुग्धकारी प्रेयसी और उपेक्षित मानवता के प्रति समान रूप से उन्मेषित हो उठती है। जूठे पत्ते चाटने वाले भिखारी को देखकर वह ऐसे उद्विग्न हो उठे कि परम आस्तिक होते हुए भी, सृष्टिकर्ता की विगर्हणा और भर्त्सना करने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं हुआ :–

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन देखा मैंने देखा नर को,
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ, आग आज इस दुनियाँ भर को
फिर यह सोचा क्यों न टेंटुआ घोंटा जाये स्वयं जगपति का
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का।

नवीन जी ने उपेक्षितों, पद-दलितों आदि पर कई कविताएँ लिखीं। यही नहीं वे मनुष्य को ही जगतपति कहते हैं, और यह मनुज उपेक्षित मनुज है। वे लिखते हैं–

छोड़ आसरा अलख शक्ति का, नर स्वयं जगतपति तू है,
तू गर जूठे पत्ते चाटे तो तुझ पर लानत है, थू है।

नवीन जी अपने समय के ऐसे सर्जक थे, जिनकी प्रासंगिकता आज भी है। उन्होंने जिस जीवन को जिया था, उसकी कीमत भी उन्हें देनी पड़ी थी।

वे जीवन भर संघर्ष करते रहे और गणेशशंकर विद्यार्थी की शहादत के वास्तविक भोक्ता बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ही थे। इतना सब होने पर भी वे 'नवीन' बने रहे। उनके ही शब्दों में उनका चित्र इस प्रकार है :–

क्या ही अजब तबीयत पाई
इस नवीन मस्ताने ने
कि बस लुटाया सरबस-बरबस
इस कवि सिड़ी सयाने ने।

नवीन जी मूलतः कवि थे। राजनीतिक जीवन में भी वे कवि ही बने रहे। राजनीति समय की माँग है। वे राजनीति में गये पर कवि-हृदय साथ लेकर। यह कवि-हृदय ही उन्हें आदर्शों की प्रेरणा देता रहा। कवि-हृदय ने ही उन्हें मानवी सरोकारों से सदैव जोड़े रखा। एक तरफ़ देश को स्वाधीन देखने की उत्कृष्ट अभिलाषा और दूसरी ओर मनुष्य के मनुष्यता की प्रतिष्ठा के लिए वे एक प्रकार से फ़कीरी बाना लेकर सतत् लिखते रहे। उनकी पत्रकारिता भी आदर्श पत्रकारिता थी। यह पत्रकारिता भारतीय जन जागृति के लिये थी। उनके हृदय में अपार प्रेम था। उस प्रेम का प्रसार ही उनका रचना-धर्म था। वे संवेदनशील औघड़दानी थे, जो यह जानते थे कि जीवन में देना ही देना सार्थक है। कबीर की तरह वे एक अलग क़िस्म का बाना पहन कर जीवन-संग्राम में कूदे थे और जीवन भर वे अपनी तरह का अलख जगाने में समर्थ भी रहे।

उनका लक्ष्य था–

रैन बसेरा नहीं मिले यदि, तो पथ में ही पड़ रहना,
बिना वस्त्र, यदि ठण्ड लगे तो यों, ही यार अकड़ रहना।
सुबह देखकर लोग कहेंगे : लो, यह तो था वह यात्री।
पर, जीते जी कातर होकर, तुम मत दीन वचन कहना।
